UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Refereed Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 169, Vol - XVII (2), April - 2018, Page No. 133-135
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

गढ़वाल हिमालय के लोकगीतों में वर्णित कन्या का वैवाहिक जीवन

प्रस्तुत शोधपत्र में गढ़वाल हिमालय के लोकगीतों में वर्णित कन्या के वैवाहिक जीवन का अध्ययन किया गया है। गढ़वाल के लोकजीवन में नारी केन्द्र में दिखाई देती है। नारी को यहाँ समाज में जहाँ विलासिता की वस्तु समझा गया, वहीं दूसरी ओर भौगोलिक विषमताओं ने नारी को खेती से जोड़ दिया। इन परिस्थितियों के कारण उसके जीवन में अनेक प्रकार की विषमताएँ उत्पन्न हो गई और ये सम्पूर्ण विषमताएँ गढ़वाली लोकगीतों में दिखाई देती हैं। गढ़वाल में पारिवारिक आदर्शों को सामाजिक आदर्शों की पृष्ठभूमि माना जाता है। नारी को परिवार का केन्द्र भी माना गया है, तो सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था का केन्द्र भी माना जा सकता है। यहाँ एक कहावत प्रचलित है कि, बारह वर्ष का लड़का तलवार थामू, और बारह वर्ष लड़की घरबार थामू, अब इस प्रकार की अपेक्षा जब लड़की से बचपन से ही की जाएगी, तो उसका सम्पूर्ण जीवन परिवार के लिए समर्पित होना स्वाभाविक है। प्रस्तुत शोधपत्र इन्हीं तथ्यों पर आधारित है।

डॉ.दर्मियान सिंह भण्डारी

किसी भी भाषा का लोक साहित्य लोक चेतना का वाहक होता है और लोक चेतना समाज परम्परा और परस्थितियों पर आधारित होती है, और यही कारण है कि लोक साहित्य के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह रचा नहीं जाता है, वह लोक में बादलों की तरह झरता है और घास की तरह उगता है। गढ़वाली भाषा और लोक साहित्य के पुरोधा स्वनाम धन्य श्री गोविन्द चातक जी कहते हैं कि लोक साहित्य अपने क्षेत्र की मिटटी पानी में ठीक उसी प्रकार से उगता और फलता फूलता है, जिस रूप में समाज के लिए उसकी उपयोगिता सिद्व होती है।[1] लोक साहित्य लोक जीवन के संघर्षों, परिस्थितियों विषमताओं के मध्य प्रकृति से तादात्मय स्थापित करते हुए लोक कंठों से स्वतः ही फूट पडता है। इस लोक साहित्य में उस समाज के समस्त लोक विश्वास अनुभव जन्य सत्य, परम्परा के दर्शन होते हैं, जिससे उस समाज का बहुत आसानी से अध्ययन किया जा सकता है। गढ़वाली लोकगीतों में लोक–साहित्य के सम्पूर्ण तत्व मिलते हैं। लोकगीतों का एक बहुत लम्बा इतिहास है, प्रारंभिक लोकगीत धार्मिक, पूजा पाठ और उपासना से संबधित दिखाई देते हैं, कुछ विद्वान तो इस सम्बन्ध में मानते हैं कि पूजा उपासना सम्बंधी लोकगीत वैदिक ऋचाओं का अनुसरण करते हुए दिखाई देते हैं। गढ़वाल में जब वैदिक संस्कृति का प्राधान्य था, तब गढ़वाल में धार्मिक लोकगीतों का बाहुल्य दिखाई देता है और इसके उपरान्त जब यहाँ नाथ संस्कृति का प्रभाव बढ़ा, तब यहाँ लोकगीतों की धारा भी बदल गई। कालान्तर मे जब गढ़वाल अनेक गढ़ों में विभाजित होकर अनेक गढ़पतियों के आधीन हो गया, तब यहाँ सत्ता का संघर्ष दिखाई देने लगता है और गढ़वाली लोकगीतों में भी यह सत्ता संघर्ष स्पष्ट प्रतिध्वनित होता है, और वीरगाथाओं का बाहुल्य लोक–साहित्य की पूँजी बनती है।

गढ़वाली लोकगीतों में नारी जीवन के अत्यधिक कारूणिक चित्र मिलते हैं। अगर यह कहा जाए कि नारी का सम्पूर्ण जीवन कारूणिकता से भरा हुआ है, तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। अनमेल विवाह, वृद्ध विवाह, बाल विवाह के साथ ही ससुराल में उसे दी जाने वाली अनेक प्रकार की यंत्रणाएँ, उसकी सास का व्यवहार, पति का परदेश गमन और इसके साथ ही जब वैधव्य ने भी उसका साथ नहीं दिया और वह जब विधवा हो जाती है, तो जैसे उसके जीवन में दुखों का पहाड ही गिर जाता है, यह समस्त पीड़ायें गढ़वाली लोकगीतों में मुखरित हुई हैं। यद्यपि सम्पूर्ण पहाड़ी जीवन श्रमसाध्य है, लेकिन इसके बाद भी यहाँ रोजी–रोटी की पूर्ति नहीं हो सकती है और रोजी–रोटी की खोज में पुरूष को घर छोडकर जाना ही पड़ता है और फिर रह जाती है, उसकी नवविवाहिता जो कि पूर्णरूप से सास के आधीन रहने के लिए मजबूर हो जाती है। नवविवाहिता कहती है कि –

"तेल कडाही जनु लायो साग,
तनी मेरी सास ु व्वै, तनी मेरो भाग।
माटा की खाणी, खणी जालू माटो,
तनी दूरू पानी व्वै अर उकाळी कू बाटो।" [2]

इस लोकगीत के सम्बंध में कुछ विद्वान कहते हैं कि केवल तुकबन्दी के लिए तेल की कड़ाही और साग शब्द का प्रयोग किया गया है, जबकि कुछ विद्वानों का कहना है कि विवाहिता ने अपनी सासू को तेल की कड़ाही के समान बताया है और अपने भाग्य को साग के समान व दूसरी पंक्तियों में कहा गया है कि पानी घर से बहुत दूर है और चढ़ाई पार करके पानी लाना पड़ता है :

कूटला को बेंड मांजी, कूटला को बेंड,
सासू जीन करे मांजी,जिकुडी को छेंड।
फूली जाली लैण मांजी, फूली जाली लैण,
ज्वैं मेरो ठीक मांजी सासू छ डैण। [3]

वह कहती है कि सासू के व्यवहार ने मेरे हृदय में छेद कर दिया है, वह अफसोस करती है कि मेरे स्वामी तो ठीक हैं, लेकिन सासू ही

विभागाध्यक्ष (हिन्दी विभाग), बालगंगा महाविद्यालय, सेन्दुल (केमर), टिहरी गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

डायन की तरह व्यवहार करती है। ससुराल में खान–पान भी ठीक नहीं है, उसकी सास उसे सूखी रोटियां नमक के साथ खाने के लिए देती है, यह कोरे नमक के साथ जो रोटियां दी जाती हैं, वह भी भरपेट नहीं दी जाती हैं, सासु मात्र दो रोटियां खाने के लिए देती है और यह आरोप लगाती हैं कि बहू मोटी हो गई है, अब काम कौन करेगा?

चरी जालू गोरू मांजी चरी जालू गोरू,
सूखी रोटी देंदी मांजी लोण देंदी कोरू।
खाई जालू घीउ मांजी खाई जालू घीउ,
सासू जी कू लग्यूं मांजी दवी रोटी डीउ।
दुअन्नी खोटी मांजी दुअन्नी खोटी,
सासू बोदी मांजी मेरी व्वारी हवैगी मोटी। (4)

गढ़वाली लोकगीतों में लड़की के मन में इस बात की टीस साफ दिखाई देती है कि किस प्रकार से उसके साथ भेदभाव किया गया है। वह कहती है कि यदि मैं लड़का होती, तो मुझे स्कूल भेजा जाता पर मैं लड़की थी, इसलिए मुझे ससुराल भेज दिया गया। वह बहुत कारूणिकता के साथ कहती है कि माँ के जो प्यारे हैं, वह तो माँ के साथ ही होंगे, लेकिन मुझे दूर भेज दिया गया :

डाली लग्या फूल मांजी डाली लग्या फूल,
बाबा कू लडीक होंदी मैं जान्दी स्कूल।
घूगती घूराई मांजी घूगती घूराई,
व्वै का लाडा व्वै मूं होला मैं दूरू वेवाई। (5)

उसे ससुराल में देखभाल कर नहीं दिया गया, इस कारण वह कहती है कि इसके लिए मायके वालों को उसके श्राप का भागी बनना पड़ेगा। वह अपनी माँ से कहती है कि उसे उसकी याद आ रही है, उसे उसकी खुद लगी है और अगर आग भर भरायेगी, तो वह भय्या को उसे लेने के लिए भेजना :

मसेटो मेवायो मांजी मसेटो मेवाई,
सरापी पडायन मांजी कूघरू वेवाई।
सुपा लाई देण मांजी सुपा लाई देण,
आग भभराली मांजी भ्यैजी भेजी लेण। (6)

ससुराल के नाम से ही अनेक दुखों की परिकल्पना की गई है। विवाह के समय ही जब बेटी की विदाई की जाती है, तो माँ दूल्हे के परिवार वालों के साथ ही बारातियों से भी विनती करते हुए अपनी बेटी को किसी प्रकार का दुःख न देने का निवेदन करती है, वह कहती है कि, मैंने इसके पालन–पोषण में अत्यधिक कठिनाइयों का सामना किया है,.....

अरे अरे लोको पंडित लोको, सज्जन लोको,
मेरी बेटी दुख जन दीया ए।
दस धारी मैंले दूध पिलायो,
मेरी बेटी दुःख जन दीया ए।
दस तुम्ब मैंले तेल चुबायो,
दस गठरी मैले कपडा मोलायो।
मेरी धीया दुःख जन दीया ए।
अरे अरे लोको जन्ती का लोको.....(7)

कन्या के हृदय की करूणा भी इन मांगल गीतों में दिखाई देती है। वह ससुराल की कल्पना से भयभीत हो जाती है। ससुराल जाने का रास्ता और भी कष्टदाई उसे दिखाई देता है :

काला डांडा पीछ बाबा जी काली कुंयेड़ी,
कन कैक जालू बाबा जी लगदी डैर।
कनकैक जालू बाबा चौ डांडा पोर,
अपण नौं कू बाबा जख पौन न पंछी। (8)

लड़की अनेक स्वप्न देखती है, लेकिन उसके स्वप्न ससुराल जाते–जाते टूट जाते हैं। मायके में जगे स्वप्न जब ससुराल में जाकर भंग हो जाते हैं, तो उसका यह दुःख गढ़वाली लोकगीतों में भी मुखरित हुआ है :

तिन त बोली मैन पटटी की पटवानी होण बेटी नगीना,
तब नी होई गौं की पदानी बेटी नगीना। (9)

मायके में वह अनेक स्वप्न देख चुकी थी, उसे इन स्वप्नों के सच होने का विश्वास था, लेकिन समय की गति ने उसके भाग्य को बदल दिया है। अब जिन हाथों से वह कलम पकड़ती थी, उन हाथों से उसे दरान्ती पकड़नी पड़ रही है। अपने इस स्वप्न को टूटने के लिए वह अपने पिता को दोषी बताती है कि न वह अंग्रेजी पढ़ाते और न वह स्वप्न देखती, और अपने चाचा को भी कि उन्होंने उसे पहाड़ विवाह दिया है :

भुवां मां दवाती घुंडयों मां किताबी कलम की
हात्योंन दाथी नीं धरें दी,
बाबा कू मरे अंग्रेजी पढाई चाचा कू
मरे पहाड़ बेवाईं। (10)

लोकगीत मुख्यतः अनुभूति प्रधान होते हैं। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के अनुभव का संचय लोकगीतों मे होता है। हृदय की भावमयी अनुभूतियों को वाणी देना ही लोकगीतों के सरस पक्ष की विशेषता होती है, अतः लोकगीतों को अनूभत ज्ञान का वाहक भी माना जाता है। लोक मानस विभिन्न अवसरों पर जिस प्रकार से विभिन्न परिस्थितियों से साक्षात्कार करता है, उन परिस्थितियों का चित्रण लोकगीतों में स्वाभाविक रूप से होता है। गढ़वाल हिमालय परिक्षेत्र में कृषि ही जीविकोपार्जन का मुख्य साधन है। अत्यधिक कठोर श्रमश्राध्य जीवन होने के कारण यहाँ जीवनयापन करना आसान नहीं है। नारी यहाँ पुरूष के प्रेम और ऐश्वर्य की सहभागिनी ही नहीं होती है, वरन् वह उसकी सहयोगिनी होती है। नारी और पुरूष के पारस्परिक सहयोग के अभाव में यहाँ जीवनयापन करना सम्भव नहीं है। दोनों में कार्य विभाजन देखा जाता है। वह अपने पति को इन कार्यों के निर्वहन में पूर्ण सहयोग देने का विश्वास दिलाती है। विडम्बना यह है कि यहाँ कितना भी श्रमशील व्यक्ति क्यों न हो, उसे जीविका के लिए घर छोड़कर जाना ही पड़ता है और नारी को आखिर पति वियोग की कष्टदायी पीड़ा सहन करनी पड़ती है। अब जब कि विवाह को हुए अभी कुछ ही दिन हुए हों और पति परदेश जाने के लिए तैयार हो रहा हो, तब कैसे हो सकता है कि लोक में उसकी गूंज न सुनाई दे। नव विवाहिता परदेश जाने के लिए मना करती है :

वूणी जालो वेश अबी अबी बाली माया अबी परदेश।(11)

गढ़वाल के श्रमसाध्य जीवन में उसे मायके में भी चैन नहीं मिला, क्योंकि यहाँ सौतेली मां के कारण उसे अनेक कष्ट उठाने पड़े। ससुराल आई तो वर्षा ऋतु जंगलों में बिताई ग्रीष्म और शरद कूटने पीसने में बितानी पड़ी।

सैरा बसग्याळ बण मां रूडी कूटण मां,
ह्यूंद पीसी बितैनी, म्यारा सदानी यनी दिन रैनी।
कूटीक पीसी क मैन रात दिन एक काया,
सौत्येली व्वै छाई मैतु मां भी खैरी खाया। (12)

कुछ महीने ऐसे हैं, जिन महीनों में कि विवाहिता अपने मायके

आती है, या ऐसा भी कहा जा सकता है कि पूर्व से ऐसी परम्परा है कि इन महीनों में विवाहिता बेटी अपने मायके आती है और वह महीने हैं – चैत और पूष। इन महीनों में मायके आने का कारण मुख्यतः यह है कि इन महीनों मे गढ़वाल में किसी प्रकार से कृषि कार्य नहीं होता है, अतः एक प्रकार से उसे कुछ दिन की छुटटी मिल जाती है। इन महीनों में भी वह मायके की राह देखती है कि कोई वहाँ से सन्देश आ जाए, लेकिन जब मायके से कोई सन्देश नहीं आता है, तो उसे ससुराल में ही रहना पड़ता है, और जब उसकी सहेलियां मायके जाती हैं, तब वह अपने भाग्य को कोसती है :

बेट्यों का खुदेड़ मैना चैत पूष आइन ग्यैन,
मैत्यूं का सासा छाई तौंल रैबार नि दयाई,
दगड़्या भग्यान मेरी मैतु गैनी,
म्यारा सदानी इनी दिन गैनी। (13)

जब वह मायके चली जाती है, तो वह पुनः ससुराल जाने के लिए उसे मनाना पड़ता है, मां उसको समझाने का प्रयास करती है और विश्वास दिलाती है कि उसे दूसरे साल फिर मायके बुलायेंगे, अगले साल कौथिग है, उस कौथीग देखने आना फिर कमसे कम महीने दिन यहीं रहना, और उसे उस समय दौण दैज्या देकर विदा करेंगे, तू इस समय उठ और तैयार हो जा, ससुराल दूर है, बालों का श्रृंगार कर जाने के लिए तैयार हो, वह कहती है :

सुखराला हैंका साल,त्ये मैत बुलौलू,
कौंथिग ऐ मैनका रै, दोण दैजू दयोलू।
बिजी जादी लाटी,पैट दूर च सैसुर गाड स्युंद पाटी।(14)

गढ़वाली नारी के दुखों का वर्णन कई लोकगीतों मे मिलता है। वह अनेक प्रकार के दुखों का सामना बचपन से ही करती है, एक लोक गीत में वर्णन आया है कि–

को ढुंगो नि पूजी मिन, कै डांडा नि गौंउ मी,
क्व खैरी नि खाई भैजी त्वेमा क्य लगौंउं मी। (15)

जीवनयापन करने के लिए कठिन मेहनत आवश्यक है। जीवनयापन करने के लिए ऋण लेना पड़ता है, जो कि अल्प समय में ही दूना हो जाता है। मकान बनाना हो, विवाह हो, या अन्य कोई बड़ा कार्य यह गढ़वाल में बिना ऋण लिए पूर्ण नहीं होते हैं। ऐसी स्थिति में नवविवाहिता वैवाहिक जीवन का सुख भी प्राप्त नहीं करती है। इस स्थिति पर वह कहती है कि अभी अभी तो प्रेम प्रसंग आरम्भ हुआ था और इसी समय तुम्हें परदेश जाना पड़ रहा है, वह अपने पति से निवेदन करती है कि वह अपनी नाक की नथ साहूकार का ब्याज चुकाने की बात कहती है और उससे परदेश न जाने का निवेदन करती है, लेकिन साहूकार न सोने देते हैं और न खाने इसलिए वह कहती है कि :

गला कू हार, खाण नीं देंदा सेण घर मूं भौकार।
दुकानी को नफा, लाणूक थेकली नी च खाणूक गफा।
झंगोरा की बाल नाक की नथूली
देलू न जा सुवा माल।(16)

पति उससे कहता है कि नथ बेचने से ब्याज की पूर्ति नहीं होगी। वह उसे समझाने का प्रयास करता है कि प्यार प्रेम तब ही हो सकता है, जब ऋण समाप्त हो जाएगा।

कतरयो त प्याज, नाक की नथूलीन नी पूरेण्या ब्याज।
ईन खणी मीन,तेरी मेरी माया जब कटेलू रीण। (17)

गढ़वाल में नारियों का जीवन अत्यधिक कष्टपूर्ण है, यह सत्य तो सभी जानते हैं, लेकिन ससुराल में जब उस पर अत्याचार होने लगते हैं, तो उसका जीवन अत्यधिक कष्टप्रद हो जाता है। अनेक ऐसे उदाहरण देखे गए हैं, जबकि वह ससुराल पक्ष की क्रूरता की शिकार बनती है। कई ऐसे उदाहरण भी हैं, जबकि उसे जान से भी हाथ धोना पड़ता है। दहेज हत्याओं के अनेक उदाहरण मिलते हैं, लेकिन कुछ उदाहरणों में वह पति की क्रूरता की शिकार होती है।

ग्यौं जौ का कीस मांजी ग्यौं जौ का कीस,
मारीक फेंक्यूं मांजी सडकी का नीस।
छोटा छोटा भूलों स्कूल जान,
मेरी मांजी रोली रोण न द्यान। (18)

गढ़वाल में एक समय वृद्ध विवाह और बेमेल विवाह का आधिक्य दिखाई देखा जाता था। वृद्ध विवाह और बेमेल विवाह का यहाँ लोकगीतों में बहुत विरोध देखा जाता है। विवाह में किसी भी प्रकार से लड़की की इच्छा को महत्व नहीं दिया जाता था, लड़की यदि बेमेल विवाह का विरोध भी करती थी, तो उसके विरोध को शान्त करने के लिए उसे पिता द्वारा मनाने का प्रयास किया जाता है। एक लोकगीत में पिता अपने बेटी से कहता है कि :

गढ़वाली लोकगीतों में वासनात्मक प्रेम के लिए किसी भी प्रकार से कोई महत्व नहीं दिया गया है। वैवाहिक जीवन की सुन्दरता में पतिव्रता का जीवन चरित्र सबसे उजला पक्ष दिखाई देता है। यद्यपि गढ़वाली लोकगीतों का एक बहुत बडा भाग अवैध प्रेम के गीतों से सम्बद्ध है, लेकिन विवाहिता अपने पति प्रेम के लिए ही प्रसिद्धि प्राप्त करती है। पति प्रेम के अनेक उदाहरण गढ़वाली लोकगीतों में मिलते हैं और साथ ही ऐसे उदाहरण किसी अन्य भाषा के साहित्य में ऐसे उदाहरण नहीं मिलते हैं। रामी बौराणी नामक लोकगीत इसी प्रकार का लोकगीत है, जिसमें कि विवाहिता स्त्री अपने पति का बारह सालों तक इन्तजार करती है, परन्तु वह अपने पति से एकनिष्ठता बनाए रखती है। इस लोकगीत में विवाह के उपरान्त पति परदेश जाने के बाद पुनः बारह वर्षो तक नहीं लौटता है, और जब लौटता है तो साधु के वेष में वह रामी से परिचय करना चाहता है, साधु की फटकार सुनने के बाद वह असली रूप में आता है। रामी को भी यहाँ सावित्री और सीता की शांति नारी जगत में आदर प्राप्त है। उत्तराखण्ड की इन पुत्रियों पर गौरवानुभूति निर्विवाद रूप से वर्णनातीत है।

संदर्भ :

(1) चातक, डॉ. गोविन्द : गढ़वाली लोकगीत एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 312. ***(2)*** *चातक, डॉ. गोविन्द : भारतीय लोक संस्कृति का सन्दर्भ मध्यहिमालय, पृष्ठ 236.* ***(3)*** *चातक, डॉ गोविन्द : गढ़वाली लोकगीत एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 313.* ***(4)*** *वही, पृष्ठ 311.* ***(5)*** *नौटियाल, डॉ. शिवानन्द : गढ़वाल के लोकनृत्य गीत, पृष्ठ 243.* ***(6)*** *चातक, डॉ गोविन्द : गढ़वाली लोकगीत विविधा, पृष्ठ 312.* ***(7)*** *भण्डारी, डॉ. डी.एस. : गढ़वाल हिमालय की संस्कार संस्कृति, पृष्ठ 35.* ***(8)*** *वही, पृष्ठ 36.* ***(9)*** *चातक, डॉ. गोविन्द : गढ़वाली लोकगीत एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 314.* ***(10)*** *वही, पृष्ठ 314.* ***(11)*** *चातक, डॉ. गोविन्द : भारतीय लोक संस्कृति का सन्दर्भ मध्यहिमालय, पृष्ठ 239.* ***(12)*** *नेगी, नरेन्द्र सिंह : खुचकण्डि, पृष्ठ 30.* ***(13)*** *वही, पृष्ठ 35.* ***(14)*** *वही, पृष्ठ 39.* ***(15)*** *वही, पृष्ठ 43.* ***(16)*** *चातक, डॉ. गोविन्द : गढ़वाली लोकगीत एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ 317.* ***(17)*** *चातक, डॉ. गोविन्द : गढ़वाली लोकगीत विविधा, पृष्ठ 337.* ***(18)*** *वही, पृष्ठ 333.*

❁❁

UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Refereed Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 169, Vol - XVII (2), April - 2018, Page No. 136-138
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

इन्दिरागान्धीचरितम् काव्य में नारी विमर्श का स्वरूप

प्रस्तुत शोधपत्र में डॉ.सत्यव्रत के महाकाव्य 'इन्दिरागान्धीचरितम्' काव्य में नारी विमर्श के स्वरुप का विस्तृत अध्ययन किया गया है। नायिका प्रधान 'इन्दिरागान्धीचरितम्' तो नारी के समग्र प्रतिभाशाली स्वरुप का दिग्दर्शन करा देता है। जीवन की अनुकूल-प्रतिकूल प्रत्येक परिस्थिति में निर्भीक रहकर गीता की स्थितप्रज्ञता को मूर्तिमान कर दिखाने वाली इन्दिरा के बालिका, कुमारी, पुत्री, वधू, माँ व राजनेता रुप को, उसकी बाल क्रीड़ाओं से लेकर उसके प्रणय, वात्सल्य, साहस, दूरदर्शिता तथा निर्भीकता के चित्रण में उनकी नारी धारणा ही अभिव्यक्त होती है। विषम परिस्थितियों में अडिग रहकर आगे बढ़ने, विपत्तियों का पहाड़ टूटने पर अविचल रहने का अदम्य साहस दिखाने तथा प्रबल झंझावातों का सामना करने से विश्व को चकित कर देने वाली इन्दिरा डॉ.सत्यव्रत की नारी धारणा का उदाहरण बनकर ही उपस्थित है।

आबिदा अहम्मद एलेन

डॉ. सत्यव्रत की नारी विषयक धारणाओं का क्षेत्र अत्यन्त विशद है। परिवार, समाज, राष्ट्र व राजनीति में नारी की अनुपम योग्यता व प्रतिभा के अनेकशः प्रसंग उनकी विभिन्न कृतियों में उपलब्ध हैं। आधुनिक युग के सजग साहित्यिक प्रहरी के रूप में उन्होंने नारी की यातना से लेकर उसकी उपलब्धि तक का अत्यन्त प्रभावपूर्ण अंकन किया है। उसका 'आंचल में है दूध और आँखों में पानी' का अबला स्वरूप तथा 'पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में' का शान्त, सौम्य व प्रेरक स्वरूप उनकी लेखनी द्वारा मार्मिक ढंग से प्रस्तुत हुआ है। उनकी नारी विषयक धारणाओं में नारी झांसी की रानी भी है और पग पग पर साथ देने वाली कस्तूरबा भी। पतिपरायण सीता भी और पति की भर्त्सना करने वाली विद्योतमा भी। वह बुध्दि बल से परास्त करने वाली गार्गी भी है और तपोबल से श्रेष्ठ पति का वरण करने वाली पार्वती भी। उनकी नारी पुत्री, पत्नी, माँ, बहन के साथ–साथ एक कूटराजनीतिज्ञ का कार्यभार भी निपुणता से निभाने में सक्षम है। स्वतन्त्रता संग्राम में सहयोग देने वाली उनकी नारी अपूर्व साहस, त्याग एवं प्रतिभा का अलौकिक परिचय देती है। देश और समाज में निरन्तर प्रयत्नशील उनकी नारी की छवि अनेकानेक प्रतिभा रंगों में अंकित है।

डॉ. सत्यव्रत के महाकाव्यों में विशेषकर 'इन्दिरागान्धीचरितम्', 'श्रीबोधिसत्त्वचरितम्' एवं 'श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्' में नारी को बालिका, कुमारी, वधू, पत्नी, पुत्री, बहन, माँ तथा राजनीतिज्ञा के रूप में वर्णित किया गया है। नायिका प्रधान 'इन्दिरागांधीचरितम्' तो नारी के समग्र प्रतिभाशाली स्वरूप का दिग्दर्शन करा देता है। जीवन की अनुकूल–प्रतिकूल प्रत्येक परिस्थिति में निर्भीक रहकर गीता की स्थितप्रज्ञता को मूर्तिमान कर दिखाने वाली इन्दिरा के बालिका, कुमारी, पुत्री, वधू, माँ व राजनेता रूप को, उसकी बाल क्रीड़ाओं से लेकर उसके प्रणय, वात्सल्य, साहस, दूरदर्शिता तथा निर्भीकता के चित्रण में उनकी नारी–धारणा ही अभिव्यक्त होती है। विषम परिस्थितियों में अडिग रहकर आगे बढ़ने, विपत्तियों का पहाड़ टूटने पर अविचल रहने का अदम्य साहस दिखाने तथा प्रबल झंझावातों का सामना करने से विश्व को चकित कर देने वाली इन्दिरा डॉ. सत्यव्रत की नारी धारणा का उदाहरण बन कर ही उपस्थित है। पराभव की घड़ियां उसे हतोत्साहित नहीं कर पातीं और वैभव के क्षणों में वह अपनी विवेक नहीं खोती, यही है डॉ. सत्यव्रत की नारी धारणा।

वे नारी के बाह्य व आन्तरिक गुणों से युक्त, साहस, सौन्दर्य व आकर्षण से युक्त सर्वांगीण गुणमय, भावुक, सौम्य एवं साहसी व्यक्तित्व के भी पारखी है :

नेत्री जनानां हृदयस्य जेत्री
भेत्त्री रिपूणामपि दुर्मदानाम् ।
सौम्यातिः सौम्यगुणाभिगम्या
'यत्रातिस्तत्र गुणा वसन्ति ।। (1)

दादा से अनेक गुड़ियां तथा परिष्कृत रूचि, पिता से स्वाधीनता और अदम्य साहस, दादी से भक्ति व आस्था एवं माँ से संस्कृति में प्रेम और सुकुमारता ग्रहण करने वाली बालिका इन्दिरा में उन सब गुणों का समावेश करवा कर, उन्होंने नारी के अपेक्षित गुणों को ही इंगित किया है। उनकी नारी में जीवन का बाह्य स्वरूप ही निहित नहीं है, आन्तरिक सौन्दर्य व संसति प्रेम तथा तत्कालीन सामाजिक व राजनैतिक परिवेश के प्रति सजगता व संवेदनशीलता भी है। उनकी बालिका गुड़ियों से केवल खेलती ही नहीं है, उनके साथ अपने भावों का समीकरण भी करती है। उसके बचपन से निर्मल हृदय पर पड़े स्वतन्त्रता के संस्कारों की विलक्षण भूमिका 'जाने आफ आर्क' नाम की कन्या गाथा ने बखूबी निभाई। नारी के बालिका स्वरूप का सत्याग्रही पुतलों की विजय पर तालियां बजाना, उसके हाथों में तिरंगे झण्डे फहराना, 'जय भारत माता की' ध्वनि का

जे-62, गवर्मेन्ट क्वार्टर, जवाहर नगर, श्रीनगर-कश्मीर (जम्मू-कश्मीर)

जयघोष करना बालिका में युगधर्म के प्रभाव से स्वातन्त्रय संघर्ष को परिलक्षित करता है। उनकी नारी चाहे बालिका है, या प्रधान मन्त्री, उसमें राष्ट्र का पूर्ण प्रस्फूटन है।

राष्ट्र–प्रेम व स्वतन्त्रता संग्राम में सशक्त योगदान डॉ. सत्यव्रत की नारी की महत्वपूर्ण पहचान है। 'इन्दिरागान्धीचरितम्' में मोतीलाल व जवाहरलाल को कारावास में डाल दिये जाने पर परिवार की दृढ़निश्चयी महिलाओं का सक्रिय रूप से स्वतन्त्रता संग्राम सम्बंधी गतिविधियों में जुट जाना, उनके राष्ट्र के प्रति समर्पण को बताता है :

मनस्विनां तावदुपोढसत्त्वो
विपत्सु मग्नोअप्यसुखस्थितोअपि।
न स्त्रीजनः प्रातवत्कदाचिच्
चेष्टेत शैलप्रतिमस्वभावः।। (2)

प्रतिदिन बाजार में जाकर व्यापारियों को विदेशी माल के क्रय–विक्रय से रोकना, अनेक सभाओं और गोष्ठियों में देश की स्वतन्त्रता पर जोशीले भाषण करना, विदेशी शिक्षा के 'बायकाट' के प्रयोजन से विभिन्न विद्यालयों में जाना, दृढ़ आस्था से धरना देना और छात्रों को दास बनाने वाली शिक्षा के प्रति उदासीन करने हेतु झकझोरना आदि राष्ट्रप्रेमी नारियों की विभिन्न गतिविधियों को डॉ. सत्यव्रत ने उभारा है :

तद्वारि बध्दस्थितिको ढास्थः
प्राबूबुधच्छात्रगणान् समेतान्।
दास्याय भो ! नूनमियं भवेद्वो
विद्येति तां किं समुपार्जयध्वम्।। (3)

उपरोक्त प्रसंग यही दिग्दर्शन कराते हैं कि कवि की नारी सम्बन्धी धारणाएँ परम्परा की सीमाओं में बध्द नहीं है। कर्त्तव्यनिष्ठा, देशप्रेम व स्वतन्त्रता प्राप्ति उनके नारीत्व के अलंनकरण रहे हैं। वहाँ रूढ़िवादी वाचारधारा तथा व्यवहार उनकी उद्देश्य प्राप्ति में बाधक नहीं बनते। कवि की नारी भले ही गृहिणी है, परन्तु देशरक्षा का आह्वान पाते ही वह 'झांसी की रानी' बन अदम्य साहस व शौर्य से अपने गृह से निकल पड़ने को आतुर हो जाती है। उसका मनोबल, तीक्ष्ण बुध्दि तथा कार्यपटुता किसी सेनानी से कम नहीं है। कवि की बालिका नारी भी देशसेवा करने को इतनी आतुर थी कि आयु में कम होने के कारण कांग्रेस की सदस्यता प्राप्त करने में असमर्थ होने पर बालकों की नई संस्था बनाने में सफल हुई। यह बात उनकी नन्हीं नारी को झकझोर जाती थी कि सदस्यता पाने में असमर्थ बच्चे देश की सेवा किस प्रकार करें ? कवि ने इस प्रसंग में अपनी राष्ट्रभावना को भी प्रवेश दिया है। वह स्वयं देश स्वातन्त्रय को उतना महत्व देता है कि उसकी लेखनी नन्हीं–नन्हीं बालिकाओं में इतनी दूरदर्शिता व देश के लिये कुछ करने की लिप्सा का वरण नहीं पर पाती। उसकी नारी में संगठन शक्ति व नेतृत्व के गुण विशेष उल्लेखनीय हैं :

अबला वा शकाया
वा कथञ्चिदपि नैव जनाः।
रोध्दं शक्या दृढ़संङ्कल्पाः
प्रबलानि गिरिणदीजलानि यथा ।। (4)

डॉ. सत्यव्रत नारी के प्रणयिनी स्वरूप में भी उसके ढ़संकल्प के ही उपासक रहे हैं। इन्दिरा–फिरोज के प्रणय सम्बंध जब परिणय में परिणय होने को थे, तो कवि ने इन्दिरा के उसे ही पति वरण करने के ढ़संकल्प की ही बात कही, अन्य कुछ नहीं। प्रणयिनी प्रियदर्शिनी के दृढ़संकल्प के सम्मुख पिता के निम्नलिखित वचन, नारी के दृढ़संकल्प को ही इंगित करते हैं। कवि को नारी का दृढ़संकल्प विशेष रूप से आकर्षित करता है, भले ही वह इन्दिरा हो या सीता। देशप्रेम हो या पतिप्रेम :

तस्या दृढ़ां मतिमवेक्ष्य पिता स्वपुत्रया
श्छन्दस्तावस्तु तनये ! इति तामुवाच ।
नेच्छाविघातमहाचरितास्मि ते, त्वं
प्राणैः प्रियाअसि गुणवत्यसि मे तनूजे ।। (5)

सामाजिक रूढ़ियाँ व लोगों की विचारमूढ़ता प्रणयिनी को विचलित नहीं करतीं। आंधी में भी तटस्थ खड़े रहने वाले पर्वतों की तरह ही नारी प्रणय–संकल्प में अडिग रहती है :

पत्रैस्तु तैर्विचलिता न बभूव बाला
नो निश्चयं च विजहौ दृढ़बुध्दिरेषा।
वाते महत्यपि महागिरयो भवेयु
निर्ष्कम्परूपरूचिरा इति नात्र चित्रम ।। (6)

लज्जा नारी का आभूषण है, वे इस तथ्य को परिपुष्ट करते हैं। आन्दोलनों, सम्मेलनों व स्वतन्त्रता संग्राम के अन्य क्रियाकलापों में निस्संकोच भाग लेने वाली नारी, जब वधू बनती है, तो वे उसे लज्जा का अलंकरण ही पहनाते हैं, जो उसके रूपसौन्दर्य को चार चांद लगा देता है :

दताङ्गरागरूचिरा स्वसखीभिरेषा
मुग्धा वृताअतिकमनीयशरीरयष्टिः ।
नानाविधाभरणभूषितहृद्यरूपा
लज्जावनम्रवदनाअतितरां चकाशे ।। (7)

वे नारी की कलाप्रियता के भी प्रशंसक हैं। अवसर पाते ही वे उसकी कलात्मक रूचि को अवश्य सराहते हैं। नारी से गुणों की विशद अपेक्षा कदाचित् उन्हें नारी प्रतिभा के प्रशंसक के रूप में प्रतिष्ठित करती हैं। विवाहोपरान्त इन्दिरा का नव–जीवन, उसका नया घर, उसकी रूचि के अनुकूल घर की साज–सज्जा, सब कवि की नारी की कलाप्रियता के सूचक हैं :

नूत्नं स्वं गृहमिदिमिन्दिरा व्यधत्त
सज्जं स्वां रूचिमनुरूध्य वाञ्छनीयम् ।
स्वकल्पं तद्रुचिरतया सुभूषितं सत्
सर्वेषां नयनयुगं जहार सद्यः ।। (8)

वे नारी के साहस के भी प्रशंसक हैं। इन्दिरा के चरित्र में उन्होंने ऐसी नारी को चित्रित किया है, जो कोमलांगी होने पर भी निश्चय में विचलित नहीं होती और अपनी प्रयोजनपूर्ति में उसे लाठियां भी खानी पड़ें, तो वह परवाह नहीं करती। तिरंगा झण्डा फहराने के निश्चय ने इन्दिरा को पुलिस की क्रूर लाठी–वर्षा का निशाना बनाया, परन्तु इन्दिरा में साहसी नारी वहीं अडिग खड़ी रहीः

वर्षत्सु तावल्लगुडप्रहारे
ष्वनारतं साहसमाश्रयन्ती ।
शिलेव साक्षात्सुढाअवतस्थे
क्षणं न जात्वेव च सा चकम्पे ।। (9)

आदर्श पुत्री की भूमिका में भी नारी की छवि कवि मन पर विशेष अंकित है। पुत्री व पिता का सम्बन्ध कवि हृदय पर ऐसी छाप लिये हुए है कि दोनों ही एक दूसरे के लिये अपने–अपने ढंग से कुछ

करने को आतुर रहते है। पिता का स्वप्न पुत्री को एक आदर्श नारी बनाने में ही साकार होता है और वह उसकी शिक्षा, संस्कार, विवाह, पारिवारिक परिवेश आदि को लेकर हमेशा चिन्तित रहता है। पुत्री भी पिता की समस्याओं को दूर नहीं, तो उन्हें न्यून करने में ही सन्तोष पाती है। अपने जीवन में भरी–पूरी होने पर भी माता–पिता का स्वास्थ्य व शान्ति ही उसे आनन्दित करती है। सखीजनों के हास–परिहास में निरत होने पर और प्रसन्नचित्त पारिवारिक जनों के बीच होने पर अत्यन्त हर्ष के समय में भी, पुत्री के नयनों में वियोग के विषाद की क्षीण रेखा का इतना प्रभावूपूर्ण वर्णन शायद ही कहीं अंकित हुआ हो। इसमें उन्होंने जहां एक ओर आदर्श, कोमलहृदय, आसक्ता कन्या की छवि अंकित की है, वहीं पुत्री के प्रति अपनी पितृ–भावनाओं के भी पट खोल दिये हैं। इन क्षणों में नयन ही मानों मुखरित हो उठते हैं और पिता–पुत्री के अन्तर्मन की व्यथा को कह देते हैं :

हासप्रहासनिरते स्वसखीजनेअपि ।
हर्षाप्लुते परिजने परितः स्थितेअपि ।
आलक्ष्यताक्षियुगल भृशमायतेअस्याः
सूक्ष्मा प्रहर्षसमयेअपि विषादरेखा ।। (10)

जीवन को सार्थक बनाने वाले नारी के जननी स्वरूप, शुभ मातृपद को प्राप्त करने में नारी की तत्यता इसी धारणा की पुष्टि करती है :

स्त्रियाः तार्थत्वमिदं लभेत सा
मनोरमं मातृपदं शुभं यदि ।
अपत्यहीना विपलाअन्यथा त्वियं
स्वजीवितं संक्षपयेदनर्थकम् ।। (11)

बच्चों के प्रति नारी का अगाध स्वाभाविक प्रेम कवि की वत्सलता का परिचायक है। जननी के लिए सन्तान प्राप्ति ही उसके परम हर्ष की द्योतक होती है। कर्त्तव्य बोझ में दबी होने पर भी स्निग्धा मां के रूप की ही कवि ने कल्पना की है। बच्चों के संग खेलना, खाना, उनके सुख–दुःख की संगिनी बनकर ही मातृत्व का पालन करना कवि के लिए आदर्श मातृ स्वरूप है। भारतीय संसति की परम्परा में परिवार का विकासक्रम बहुत ही मनोहर है। शिशुओं की अठखेलियां जब परिवार में गूंजती हैं, तो दादा–दादी का हर्ष अपार हो जाता है और वे अपने को धन्य मानने लगते हैं। कवि ने नारी के दादी स्वरूप के आन्नद, सन्तोष व सौभाग्य का भी अंकन किया है। नारी चाहे अच्छी प्रशासिका हो अथवा जननेत्री परन्तु वात्सल्यरससिकक्ता माता का रूप उसे जो सन्तुष्टि प्रदान करता है, वह कोई ओर नहीं। यही कारण है कि कवि ने इन्दिरा के माध्यम से उसके कुशल प्रशासन व जननेत्री के गुणों के आगे पुत्री, पत्नी, माँ व दादी के स्वरूप को ही विशेष उभारा है। बच्चों के प्रति नारी का स्नेह व अनुराग ही उसके अन्य कर्तव्यों से बढ़कर होता है। नारी का ममतामय स्निग्ध रूप ही डॉ. सत्यव्रत को आकर्षित करता है, क्योंकि जो जननी है, उसकी कोई तुलना नहीं हो सकती।

विभिन्न उत्तरदायित्वों को कन्धों पर धारण किये और निरन्तर कार्यभार में व्यस्त रहते हुए भी जननी अपने बच्चों को जी भर कर लाड करती है और जब वही जननी दादी पद ग्रहण करती है, तो उसकी शिशु–प्रियता और बढ़ जाती है वह और अधिक स्नेहसिक्त हो उन पर अपने वात्सल्य की वर्षा करती फूली नहीं समाती क्योंकि उसे वे बच्चे अपनी जीवन बगिया के हँसते खेलते फूल ही लगते हैं, जिनकी भीना–भीनी सुगन्ध वह अपने जीवन के शेष क्षणों में भी लेना चाहती है। नारी की यह सुन्दर छवि उनकी नारी धारणा की प्रतीक है।

सन्दर्भ :

(1) इन्दिरागान्धीचरितम्, पूर्वपीठिका, पद्य 2, पृ. 8.
(2) वही, सर्ग 6, पद्य 11, पृ. 55.
(3) वही, सर्ग 6, पद्य 15, पृ. 56.
(4) वही, सर्ग 9, पद्य 21, पृ. 88.
(5) वही, सर्ग 15, पद्य 6, पृ. 150.
(6) वही, सर्ग 15, पद्य 12, पृ. 151.
(7) वही, सर्ग 15, पद्य 30, पृ. 156.
(8) वही, सर्ग 16, पद्य 15, पृ. 162.
(9) वही, सर्ग 17, पद्य 15, पृ. 172.
(10) वही, सर्ग 15, पद्य 25, पृ. 155.
(11) वही, वर्ग 22, पद्य 3, पृ. 221.

❁❁

UGC -

APPROVED - JOURNAL

UGC Journal Details

Name of the Journal :	Research Link
ISSN Number :	09731628
e-ISSN Number :	
Source:	UNIV
Subject:	Accounting;Anthropology;Business and International Management;Economics, Econometrics and Finance(all);Education;Environmental Science(all);Finance;Geography, Planning and Development;Law;Political Science a;Social Sciences(all)
Publisher:	Research Link
Country of Publication:	India
Broad Subject Category:	Arts & Humanities;Multidisciplinary;Social Science

Print

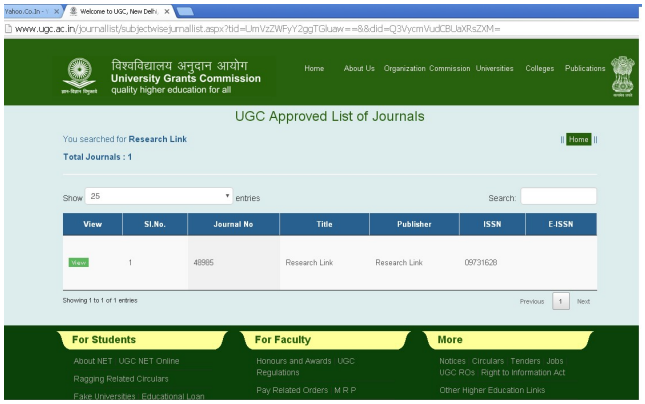

UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Refereed Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 169, Vol - XVII (2), April - 2018, Page No. 139-141
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

रायपुर संभागीय आधुनिक हिन्दी कविता में चित्रित समकालीन समस्याएँ

प्रस्तुत शोधपत्र में रायपुर संभागीय आधुनिक हिन्दी कविता में चित्रित समकालीन समस्याओं का विस्तार से अध्ययन किया गया है। समकालीन कवियों ने परिवार, समाज, राष्ट्र एवं अंतरर्राष्ट्रीय स्तर पर पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों में व्याप्त संयुक्त परिवार का विघटन, नैतिक एवं सांस्कृतिक अवमूल्यन, संवेदनहीनता, रुढ़ि, निम्न-मध्यमवर्गीय लोगों का शोषण, विधवा-विवाह निषेध, दहेज-प्रथा, कन्या भ्रूण हत्या, छुआछूत, दलित शोषण, मद्यपान, साम्प्रदायिकता की भावना, पर्यावरण प्रदूषण, वनों की कटाई, भूमण्डलीय तापीकरण, युद्ध, आतंकवाद प्रभृति विविध समकालीन समस्याओं पर लेखनी गतिमान कर जन सरोकारों से सम्बद्ध विषयों की अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने सामाजिक एवं राष्ट्रीय दायित्वों का भलीभांति निर्वहन कर मानवतावादी और वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को स्थापित किया है। अपनी रचनाओं के माध्यम से कवि आम-जनमानस का मार्गदर्शन करने के साथ स्वस्थ समाज और राष्ट्र की आधारशिला रखते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

बाल्मीकि साहू

साहित्यिक काल खण्डों पर तद्युगीन समस्याओं की प्रबलता स्पष्टतः परिलक्षित होती हैं। हिन्दी का आधुनिक काल भी इससे असंस्पर्शित नहीं है। साहित्य के सृजन में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियों की महत्वपूर्ण भूमिका आकलित की जाती है। विकासशील सामाजिक प्राणी के रूप में मनुष्य का समाज से पृथक अस्तित्व की परिकल्पना असमीचीन प्रतीतव्य है। प्रतिनिधि साहित्यकार अपनी कृतियों में सामाजिक उत्थान–पतन को रेखांकित करने में सक्षम होता है।

स्वातंत्र्योत्तर देश में मानव समाज के उत्थान की परिकल्पना हमारे महापुरुषों, राष्ट्रनायकों, मनीषियों, चिन्तकों आदि ने की थी। वह परिकल्पना अन्यान्य कारणों से सफलीभूत नहीं हो पा रही थी। देश, समाज, मानव व्यवहार तथा कतिपय अन्य विशिष्ट क्षेत्रों का नियंत्रण करने वाली राजनीति आजादी के पश्चात् 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' के सिद्धांत से परे स्वान्तः सुखाय स्वजन हिताय की दिशा में गतिमान होने लगी। परिणामतः सर्वत्र भ्रष्टाचार, महंगाई, कुर्सी–प्रेम, अवसरवादिता, सम्प्रदायिकता, धार्मिक संकीर्णता, आर्थिक विषमता की स्थिति निर्मित होने लगी। पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय प्रभृति क्षेत्रों में अनेक समस्याओं का आविर्भाव दृश्यमान होने लगा। इन विषम परिस्थितियों में भी सजग रचनाकार समकालीन समस्याओं से अवगत होकर तटस्थ भाव से उनका तथ्यपूर्ण अभिव्यक्ति देने का प्रयत्न करते हैं। कृतियों के माध्यम से ही समस्याएँ, विसंगतियाँ, विद्रूपताएँ प्रकाश में आती हैं और बुद्धिजीवियों को समस्या समाधान की ओर उन्मुख करती हैं। बुद्धिजीवी होने के कारण साहित्यकार किसी विषय के दोनों पक्षों को उद्घाटित कर समाज का मार्ग प्रशस्त करता है।

रायपुर सम्भाग के आधुनिक हिन्दी कवियों ने पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा अन्यान्य क्षेत्रों में व्याप्त विविध समकालीन समस्याओं को उद्घाटित कर अपनी रचनात्मक सक्रियता के साथ समकालीन एवं सामाजिक सजगता का परिचय प्रस्तुत किया है। उन्होंने सुधी पाठकों, आम–जनमानस को कुरीतियों, अंधमान्यताओं से सजग रहने का संकेत किया है।

परिवार एवं समाज से अभिन्न रूप से सम्बद्ध व्यक्ति वैचारिक मतभेद, विसंगतियों, मानवीय मूल्यों के विघटन के परिणामस्वरूप अपने स्वजन–परिजन व शुभचिंतकों से असम्पृक्त हो जाता है। पति–पत्नी, बंधु–बांधव, माता–पिता के प्रति शंका, अविश्वास, असहयोग की भावना, संयुक्त परिवार का विघटन, बाल–विवाह, विधवा–विवाह निषेध, जातिप्रथा, अस्पृश्यता, दहेज, दलित भोषण, मद्यपान, सती–प्रथा, कन्या भ्रूण हत्या प्रभृति समस्याप्रद रूढ़ियाँ, भ्रांतियाँ परिवार एवं समाज में व्याप्त हैं, जो पारिवारिक एवं सामाजिक वातावरण को विषाक्त कर उसके क्रमिक विकास को अवरूद्ध करते दृष्टिगोचर होते हैं।

सहोदर आज पैतृक सम्पत्ति, पत्नी की छोटी–छोटी बातों के बहकावे, स्वार्थ की भावना, माता–पिता के प्रति दायित्वों के निर्वहण से बचने, एकाकी परिवार के सुखद स्वप्न संजोने के कारण एक–दूसरे के शत्रु बन गए हैं। उनमें कटुता, बैर व तनाव की स्थिति उत्पन्न हो रही है। कतिपय पुत्र अपने जन्मदाता माता–पिता को उपेक्षित, तिरस्कृत कर दर–दर भटकने को विवश कर देते हैं। कवि लक्ष्मीनारायण शर्मा 'साधक' ने भाइयों के मध्य विवाद को निम्न पंक्तियों में चित्रित किया है :

"भाई–भाई लड़ रहे, बनकर अति नादान।
बटे खेत लघुतम हुए, टुकड़े हुए मकान।।

सहायक प्राध्यापक, शासकीय नवीन महाविद्यालय, खरोरा, जिला-रायपुर (छत्तीसगढ़)

माता की सेवा नहीं, नहीं पिता का मान।
टी.वी.–बीवी में रमा, कुलदीपक का ध्यान।।'' (1)

वत्स को वंशज और बुढ़ापे की लाठी की अंधमान्यता के परिणामस्वरूप कन्या भ्रूण हत्या एक ज्वलंत सामाजिक समस्या के रूप में हमारे समक्ष मुँह बायें खड़ी है, जिसके कारण सामाजिक असंतुलन की स्थिति निर्मित हो रही है। हम लोग विस्मृत हो रहे हैं कि मानव समाज के उत्थान हेतु स्त्री–पुरुष का साहचर्य अपरिहार्य है।

सीता, सावित्री, रानी लक्ष्मीबाई, रानी दुर्गावती, पन्ना धाय माँ, मदर टेरेसा प्रभृति नारियों की गौरवशाली परम्परा है। आज नारियाँ राजनीति के शीर्षस्थ पदों पर आसीन होने के साथ–साथ ज्ञान–विज्ञान, अंतरिक्ष, सेना, प्रशासन आदि विभिन्न क्षेत्रों में अपनी श्रेष्ठता स्थापित कर रही हैं, तथापि धन लोलुप व्यक्ति अपने पुत्र के वैवाहिक संबंध ा के अवसर पर कन्या पक्ष से दहेज के रूप में रुपये, पैसे, आभूषण, भौतिक संसाधन का मांग कर निकृष्टतम दृष्टि का परिचय देते हैं। दहेज रूपी दानव के माध्यम से स्त्रियों का इस प्रकार शोषण पुरुष प्रधान समाज की कुत्सित मानसिकता को रेखांकित करता है। जननी के रूप में प्रतिष्ठित स्त्री के शोषण का भावपूर्ण चित्र ठाकुर देवीसिंह चौहान की कतिपय पंक्तियों में उपलब्ध होते हैं :

''शोषण की मारी आज भी, भारत की नारी है।
जीवन को देने वाली ही, जीवन से हारी है।
दारुण, दहेज–दानव से उसको बचाना है।
दुनिया की सबसे सुन्दर रचना को सजाना है।।''(2)

समाज के ठेकेदारों द्वारा आरोपित सामाजिक रूढ़ियों को परम्परा के रूप में आँख बंदकर निर्वहण करना विकासशील मानव समाज के लिए कतई समीचीन नहीं है। विधवा विवाह निषेध, सामाजिक प्रताड़ना, यातना को ही द्योतित करता है, क्योंकि वैधव्य युवती के पति का असमय निधन हो जाने पर उस पर दोष मढ़ना अनुचित है। सामाजिक उत्पीड़न के कारण विधवा युवती उपेक्षा, तिरस्कार, कष्टमय, अकेले तथा घुटनमय जीवन व्यतीत करने हेतु विवश हो जाती है। कवि सुरेन्द्र दुबे ने अपने पात्र के माध्यम से समाज को चुनौती देते हुए विधवा युवती को अपनाकर उसे प्रतिष्ठा दिलाता है। तदनुसार निम्न पंक्तियाँ ध्यातव्य है :

''इस समाज से क्या डरना / जो तुम्हारे दर्दों
के प्रति मौन है?/ तुम्हें तो मालूम भी नहीं
तुम्हारा पति कौन है?/ समाज के ठेकेदारों
समाज के दलालों / इतनी तो दलाली मत करो
किसी युवती की / खुशियों को
शास्त्रों के सहारे / खाली तो मत करो
और मैं, हाँ मैं / इस विधवा का वैधव्य मिटा रहा हूँ
रोक सके समाज / तो रोके'' (3)

विकासशील, सभ्य कहे जाने वाले मानव समाज आज रूढ़ियों, अंधविश्वासों से आवृत्त हैं। जो ''ताज्जुब है/सारा शहर थम गया है/जम गया है/ बर्फ की तरह / आखिर उसे हुआ क्या है?/ मालूम हुआ / कि काट गयी है रास्ता / एक बिल्ली / कोई आगे बढ़े / तो अपशकुन टूटे''(4) पंक्तियों में ध्वनित हो रही है।

जातिप्रथा के परिणामस्वरूप छुआछूत जैसी सामाजिक समस्या उत्पन्न होती हैं, जो लोगों में हीन भावना विकसित करने के साथ निकृष्ट दृष्टि का विस्तार करती है। अस्पृश्यता की भावना सामाजिक संबंधों के निर्वहण तथा समाजोत्थान में व्यवधान उत्पन्न करते दृष्टिगत होते हैं। कवयित्री सत्यभामा आडिल ने बारिश से बचने के लिए मंदिर का आश्रय लेने वाले महार जाति के पुलिस इन्सपेक्टर पर गाँव वालों द्वारा पत्थर फेंक कर मार डालने का वीभत्स एवं सजीव चित्रण किया है। उदाहरणार्थ निम्न पंक्तियाँ अवलोकनीय है :

''एक इन्सपेक्टर,
वेर्षा की तेज बौछारों से / बचने,
मन्दिर के बरामदे में खड़ा हो गया,
वह अनुसूचित जनजाति,
महार कहा जाता / यही दोष था।
पता लगते ही; / दौड़ा आया समूचा गाँव
लग गई प्रतिष्ठा की दाँव,
पत्थरों से मार–मार कर, / अंततोगत्वा
पड़ गया मृत्यु का पाँव'' (5)

समाज के नवनिर्माण उसके उत्थान तथा मानवता के विकास में अपना योगदान देने वाले दलित व्यक्ति, शोषित, पीड़ित, प्रवंचित, उपेक्षित तथा वृक्ष से पृथक शाखा के रूप में महसूस करते हैं।

विविधताओं से विभूषित भारत धर्म निरपेक्ष राष्ट्र के रूप में परिगणित किया जाता है। जहाँ हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई, जैन, बौद्ध प्रभृति विविध धर्मों का वृहद समागम है। प्रत्येक धर्म की अपनी–अपनी मान्यताएँ और संस्कृतियाँ हैं। ये धर्म और संस्कृतियाँ मानव समुदाय में पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित होती रही हैं। धर्म एक समय मानव के आत्मोत्थान में सहायक था, परन्तु धर्म के ठेकेदारों, दलालों, शोषकों द्वारा अपने हथियार के रूप में उसका उपयोग किया जाने लगा। जिसके परिणामस्वरूप धर्म के क्षेत्र में पाखण्ड, अधर्म, मिथ्या, मूर्तिपूजा, आडम्बर, अंधविश्वास, कट्टरता प्रभृति कुरीतियाँ व्याप्त होने लगी। संस्कृति विगलित मूल्यों का त्याग कर नवीन मूल्यों को आत्मसात् करती हैं। संस्कृति के क्षेत्र में भी व्याप्त जड़ रीति–रिवाज, परम्परा, कर्मकाण्ड, मिथ्याडम्बर, अंधमान्यताएँ प्रभृति कुरीतियाँ दीमक की तरह समाज को खोखला कर रही हैं। रायपुर सम्भाग के समकालीन कवियों ने अपनी लेखनी से धार्मिक, सांस्कृतिक चेतना विकसित करने का स्तुत्य प्रयास किया है। तथाकथित धर्मगुरु तथा राजनेता धर्मोन्माद एवं घृणा रूपी अनल को प्रज्ज्वलित कर अपने स्वार्थ की रोटी सेंकते दृष्टिगत होते हैं। कवि देवीप्रसाद वर्मा ने प्रेम को सर्वोपरि धर्म के रूप में प्रतिपादित कर उनके बहकावे में आने वाले धर्मान्ध भक्तों को सजग किया है। कतिपय पंक्तियाँ अवलोकनार्थ प्रस्तुत है :

''धर्म को राजनीति के हाथों बेचकर/जो फैलाते हैं
उन्माद/बोते हैं घृणा का विष/उनका अहं तोड़ना है
हमें।/प्रेम से बड़ा कोई धर्म नहीं/दिल से दिल जोड़ना है
हमें।'' (6)

धर्म के क्षेत्र में अनेक मत–मतान्तर, रूढ़ियाँ व्याप्त हैं, जिसे तथाकथित धर्मगुरु संरक्षण देते दृष्टिगोचर होते हैं। भक्त विवेकहीन होकर इन रूढ़ियों व परम्पराओं का अंधानुकरण करते रहते हैं। कवि उमेश शर्मा ने वृक्ष से झड़े हुए पुष्प से देवी–देवताओं का शृंगार नहीं करने की परम्परा का प्रतिरोध कर नूतन दृष्टि का आविर्भाव किया

है। निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य है :

''चाहे मुरझाकर / या,
तूफानों से टकराकर,
जमीन पर गिरा फूल, / देवताओं को,
स्वीकार नहीं, / लेकिन,
उसी जमीन से पैदा होकर, / डाली पर खिल कर,
समय से पहले, / टूटकर,
वह देवता के चरणों का, / पात्र बन जाता है।
पूजा का श्रृंगार बन जाता है।'' (7)

प्रत्येक धर्म, जाति की अनेकानेक संस्कृतियाँ शताब्दियों से सरिता की भाँति कलकल निनाद करती हुई प्रवाहमान हैं।

भारत विविध संस्कृतियों का विशाल समागम है। संयुक्त परिवार का विघटन, माता–पिता व बड़ों के प्रति सम्मान का अभाव सांस्कृतिक अवमूल्यन का द्योतक है। भारतीय संस्कृति की ओट में स्त्रियों द्वारा पति, ज्येष्ठ पुत्र तथा गुरु का नाम न लेने की परम्परा का संवहन संस्कृति के क्षेत्र में व्याप्त रूढ़ियों को रेखांकित करता है। कवि संजीव बख्शी की निम्न पंक्तियाँ अवलोकनीय है :

''मुझे पूछना था / उसके पति का नाम
उसे नहीं कहना था / अपने पति का नाम
x x x
उसकी निश्छल हँसी,
एक बार फिर संवाद करती
बुद्धू, मुँह से भी कोई लेता है
पति का नाम।'' (8)

आज की भौतिकवादी युग में समाज का एक वर्ग सम्पन्न और सुविधा भोगी है, तो दूसरा वर्ग विपन्न होने के कारण जीवन और परिस्थितियों से संघर्षरत हैं। आर्थिक पक्ष मजबूत न होने के कारण व्यक्ति कुपथ की ओर अग्रसर होकर शीघ्र धनोपार्जन का उपक्रम करता है। परिणामतः चोरी, लूट, डकैती, अपहरण, हत्या प्रभृति अपराधिक कृत्यों में संलिप्त होता है। समकालीन कवियों ने विविध आर्थिक विसंगतियों, समस्याओं के अनंतर पर्यावरण प्रदूषण, वन्य जीवों का शिकार, वृक्षों की अंधाधुंध कटाई, नक्सलवाद, आतंकवाद आदि राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय समस्याओं पर भी अपनी लेखनी गतिमान की हैं।

आर्थिक विसंगति के दुष्परिणाम स्वरूप आज जन–साधारण भूख, अभाव, कुपोषण, दैनिक जीवन से संघर्षरत हैं। समाज का एक वर्ग विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा है, तो दूसरा दुविधा व कष्टमय जीवन व्यतीत करने को विवश है। आर्थिक कुचक्र में फंसे निम्नमध्यवर्गीय लोगों के बच्चे रोटी, कपड़ा और मकान के साथ–साथ चिकित्सा, शिक्षा और समाज में सम्मान पूर्वक रहने की आकांक्षा रखते हैं, परन्तु वे भिक्षुक बनकर दर–दर भटकते दृष्टिगत होते हैं। उनकी दारुण, रुग्ण दशा देखकर किसी का हृदय पसीजता नहीं है। निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य है :

''भूख आज जलती है/और शेष सृष्टि उन्हें
बेहिसाब छलती है
शोषित ये घूम रहे भिक्षुक द्वार–द्वार
सुनो–सुनो यह पुकार।'' (9)

वृक्षों की निरंतर कटाई से पर्यावरण असंतुलन, ग्लोबल वार्मिंग, अवर्षा, वायु प्रदूषण प्रभृति अनेक विकट समस्याएँ हमारे समक्ष उत्पन्न हो रही हैं। वन्य जीवों की बढ़ती शिकार के कारण अनेक वन्य प्राणियों की प्रजातियाँ विलुप्त होने के कगार पर हैं। कवि संजीव बख्शी की निम्न पंक्तियाँ उल्लेखनीय है :

''दिखाए जाते हैं / सर्कस में जंगल के शेर आज
बहुत कुछ उनके बारे / बताया जाता है
कल सागौन, शीशम दिखाए जाएँगे
साथ में रखी जाएगी वह मिट्टी, बताया जाएगा
सागौन, शीशम उगा करते थे / इसी मिट्टी में
देखने की लगेगी टिकिट'' (10)

विज्ञान का सम्पूर्ण आविष्कार मानव के विकास के लिए है, परन्तु मानवता के विकास में उसका प्रभाव शून्य दृष्टिगत होता है। परमाणु हथियार, अस्त्र–शस्त्र, मिसाइल प्रभृति अनेक विनाशक उपकरण वसुधैव कुटुम्बकम् एवं मानवता के विकास में रोड़ा डाले हुए हैं। नारायण लाल परमार की कतिपय पंक्तियाँ अवलोकनीय हैः

''सारी दुनिया यही चाहती
रोक लगे अब हथियारों पर।
राष्ट्र संघ जैसा दर्शक भी
देख देख कर हार गया है।
स्वतंत्रता की हर इच्छा को
मानों पाला मार गया है।'' (11)

उपर्युक्त विवेचनोपरांत निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि समकालीन कवियों ने परिवार, समाज, राष्ट्र एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों में व्याप्त संयुक्त परिवार का विघटन, नैतिक एवं सांस्कृतिक अवमूल्यन, संवेदनहीनता, रूढ़ि, निम्नमध्यवर्गीय लोगों का शोषण, विधवा–विवाह निषेध, दहेज–प्रथा, कन्या भ्रूण हत्या, छुआछूत, दलित शोषण, मद्यपान, साम्प्रदायिकता की भावना, पर्यावरण प्रदूषण, वनों की कटाई, भूमण्डलीय तापीकरण, युद्ध, आतंकवाद प्रभृति विविध समकालीन समस्याओं पर लेखनी गतिमान कर जन सरोकारों से सम्बद्ध विषयों की अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने सामाजिक तथा राष्ट्रीय दायित्वों का भलीभाँति निर्वहण कर मानवतावादी और वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को स्थापित किया है। अपनी रचनाओं के माध्यम से कविगण आम–जनमानस का मार्गदर्शन करने के साथ स्वस्थ समाज और राष्ट्र की आधारशिला रखते दृष्टिगोचर होते हैं।

संदर्भ :

(1) शर्मा, लक्ष्मीनारायण 'साधक' : चिड़िया बैठी नीड़, पृ. 45. ***(2)*** *चौहान, ठाकुर देवीसिंह : बढ़ो बढ़ो बलिदानी, पृ. 28.* ***(3)*** *दुबे, सुरेन्द्र : मिथक मंथन, पृ. 39.* ***(4)*** *वर्मा, देवीप्रसाद : 'बच्चू जांजगीरी', थमा हुआ जल, पृ. 79.* ***(5)*** *आडिल, सत्यभामा : दस्तक देता सूरज, पृ. 156.* ***(6)*** *वर्मा, देवीप्रसाद : 'बच्चू जांजगीरी', थमा हुआ जल, पृ. 60.* ***(7)*** *शर्मा, उमेश : तरल पाषाण, पृ. 86.* ***(8)*** *बख्शी, संजीव : सफेद से कुछ ही दूरी पर पीला रहता था, पृ. 28.* ***(9)*** *त्रिवेदी, स्वराज्य प्रसाद : आदमी पर रहे न रहे, बात रह जाती है, पृ.156.* ***(10)*** *बख्शी, संजीव : सफेद से कुछ ही दूरी पर पीला रहता था, पृ. 41.* ***(11)*** *परमार, नारायण लाल : सब कुछ निस्पन्द है, पृ. 57.*

❁❁

UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Refereed Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 169, Vol - XVII (2), April - 2018, Page No. 142-144
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

छायावाद : उद्भव एवं विकास - एक अध्ययन

प्रस्तुत शोधपत्र छायावाद के अध्ययन से सम्बंधित है। वस्तुतः छायावाद विषय को समझाने के लिए अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं, क्योंकि यही ऐसा विषय रहा है, जिसमें हर कोई अपनी विद्वता सिद्ध करना चाहता है। इसी चक्कर में इस विषय ने अपनी उस सरसता को खो दिया है, जो इसे समझने में कुछ मदद कर सकती थी। फलतः इस विषय पर सरलता से बात करने वाले विद्वान कम ही रहे हैं। परिणामस्वरुप बहुतेरे ऐसे शिक्षार्थी, अध्येता हिन्दी साहित्य के मिल जाएंगें, जिनके लिए छायावाद आज भी रहस्यवाद के आवरण में बंद कोई विषय है। इस शोधपत्र में छायावाद को उस बिन्दु से पकड़कर समझने का प्रयत्न किया गया है, जहाँ पर सामान्य पाठक की सोच अधिक रमती है। जब भी इस विषय पर कोई राय बनती है, तो अन्यत्र दूसरी पुस्तक से उस राय पर कुठाराघात हो जाता है तथा विषय वहीं का वहीं रह जाता है। अतः इस विषय पर प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से विचार किया गया है।

उमेश भारद्वाज

छायावाद हिन्दी साहित्य में द्विवेदी युग की समाप्ति (1918–20 ई.) से लेकर प्रगतिवाद (1936 ई.) के आरम्भ होने के बीच के कालांश में रचित काव्य छायावाद कहलाता है। जब भी कोई विशिष्ट काव्य प्रवृति साहित्य में अपना रूप धारण करती है, तो उसके पीछे विभिन्न परिस्थितियां या प्रेरक शक्तियां अवश्य रहती है। तो 'छायावाद' इससे अछूता कैसे रह सकता है। सर्वप्रथम हम उस प्रश्न को लेकर आगे बढेगे जिसके उत्तर में विभिन्न विद्वानों ने अपनी–अपनी राय देकर इस विषय को असामान्य–सा बना दिया। द्विवेदी युग में खड़ी बोली पद्य क्षेत्र में अपना स्थान लगभग बना चुकी थी। महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के प्रयत्नों से 'खड़ी बोली' हिन्दी में 'एक व्यवस्था व एकरूपता' आयी थी। लेकिन पद्य की भाषा में जो प्रवाहममता, रस, लय, ध्वन्यात्मकता होनी चाहिए उसका अभाव अभी भी इसमें बना हुआ था और इस अभाव को दूर करने का कार्य किया 'छायावादी' कविता ने। द्विवेदी जी ने स्पष्ट कर दिया था कि कला की सार्थकता उसकी उपयोगिता के साथ है। स्वयं द्विवेदी जी 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से ऐसे कवियों को लताड़ते रहते थे, जिनकी कविता में उनके द्वारा निर्दिष्ठ आदर्शो का पालन नहीं होता था। फलतः हिन्दी कविता उस काल में उपदेशात्मकता व अतिनैतिकता के बंधन में बंध कर रह गयी। यह काव्य की आत्मा पर प्रहार ही था कि काव्य के लिए सर्वोपरि माने जाने वाली भावों की तीव्रता तथा सूक्ष्मता का नितांत अभाव उस काल की कविता में दृष्टिगोचर होता है। इसी की प्रतिक्रिया में छायावादी कवियों ने अपनी कविता में नए रंग, नए प्रतिमान, नए छंद विधानों से अपनी लेखनी सजाई। द्विवेदी कालीन अतिनैतिकता, इतिवृात्मकता, उपदेशात्मकता आदि के स्थान पर छायावादी दृष्टिकोण खूब फला–फूला। और तो और अंग्रेजी साहित्यके कवियों का प्रभाव भी हमारे साहित्य पर दृढ रहा है। अंग्रेजी कवियों वर्डस्वर्थ, शैली, कीट्स वायरन आदि रोमांटिक कवियों का प्रभाव हिन्दी कवियों पर देखा जा सकता है।शायद इन्ही कवियों के प्रभाव स्वरूप ही हमारी कविता में भी कल्पना, स्वच्छंद भाव– प्रकाशन, व्यक्ति विशिष्ठ का प्रकाशन आदि में बढोतरी हुई है। यदि छायावाद शब्द पर विचार करें तो इस शब्द का पहला प्रयोग 'मुकुटघर पाण्डेय' ने किया था। इन्होंने 'श्रीशारदा' पत्रिका के 1920 ई. में चार अंकों में 'हिन्दी में छायावाद' शीर्षक चार लेख लिखकर छायावाद का विस्तृत और गहन विवेचन किया था, तभी से 'छायावाद' का नाम रूढ हो गया। मुकुटधर पाण्डेय की कविता ''कुररी के प्रति'' छायावाद की प्रथम कविता मानी जाती है।

द्विवेदी युग में ही एक और काव्यधारा पनप रही थी, वो थी स्वच्छन्वतावादी धारा इस काव्य के प्रवर्तक कवियों में श्रीधर पाठक, रामनेरश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय तथा बद्रीनाथ भट्ट थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्त ने भी श्रीधर पाठक को पहला स्वच्छन्दतावादी कवि घोषित किया है स्वय शुक्ल जी के शब्दों में ''पाठक जी ने प्रकृति के रूढ़िबुद्ध रूपों तक ही न रहकर अपनी आँखें से भी उसके रूपों को देखा। उन्होने खड़ी बोली पद्य के लिए सुन्दर लय तथा चढाव उतार के कई नए ढाँचे भी निकाले। स्वर्गीय वीणा' में उन्होने उस परोक्ष दिव्य संगीत की ओर रहस्यपूर्ण संकेत किया जिसके ताल सुर पर यह सारा विश्व नाच रहा है। इन सब बातों पर विचार करने पर पं0 श्रीधर पाठक सच्चे स्वच्छन्दवाद के प्रवर्तक ठहरते है'' (हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ –603–4)। उसी तरह राम नरेश त्रिपाठी के 'मिलन' 'पथिक' तथा 'स्वप्न' खंडकाव्यों में भी उसी स्वच्छन्दतावाद के दर्शन होते है। शुक्ल जी भी श्रीधर पाठक के बाद स्वयं त्रिपाठी जी को ही स्वच्छन्दतावाद के द्वितीय उत्थान में खड़ा पाते हैं। त्रिपाठी की कविताओं में इस रहस्यात्मक आवरण का दर्शन हमें मिलता रहता है एक उदाहरण देखिए –''प्रिय की सुध सी ये सरिताएं ये कानन कांतार सुसज्जित।

व्याख्याता, ग्राम व डाक - बव्वा, वाया-नाहड़, जिला-रेवाड़ी (हरियाणा)

मै तो नहीं, किंतु है मेरा हृदय किसी प्रियतम से परिचित। जिसके प्रेम पत्र आते है प्राय सुख संवाद सन्निहित।।'' (स्वप्न से)

ध्यातव्य है कि छायावद के उदभव के कारणों में उसका प्रकृति प्रेम,व्यक्ति प्रबल, स्वच्छन्द प्रवृति, बंगला साहित्य व अंग्रेजी साहित्य विशेषकर रोमांटिक काव्य का उस पर प्रभाव के साथ–साथ तद्युगीन परिस्थितियों का प्रभाव आदि कई कारण विद्वानों ने गिनवाए है। बल्कि यह सच भी है कि इन सभी कारणों, प्रवृतियों का प्रभाव छायावाद पर स्वीकार्य है लेकिन यह भी सच है कि इन सभी कारणों का छायावादी सभी कवियों पर एक जैसा प्रभाव भी नहीं पड़ा है। किसी पर किसी तत्व कि प्रधानता है, तो दूसरे पर अन्य किसी कारण का प्रभाव अधिक है, लेकिन ये सभी कारण छायावाद के उदभव के स्त्रोत अवश्य है। फलतः उक्त सभी बातों के आलोक में छायावादी काव्य के निम्नलिखित लक्ष्ण निरूपित किए जा सकते है – छायावादी काव्य प्रेम, सौंदर्य एवं प्रकृति का काव्य है।

(1) छायावादी काव्य में रहस्वाद की प्रकृति विद्यमान है। **(2)** छायावादी काव्य ''मै'' शैली अर्थात स्वानुभूति की प्रधानता का काव्य है। **(3)** छायावाद में स्थूलता के स्थान पर सूक्ष्मता रहती है। **(4)** इस काव्य में कल्पना तत्व की अनिवार्यता है। **(5)** इस काव्य में वैयक्तिक एवं सामाजिक व्यथा से असंतोष की उग्र भावना कवियों में जागृत हुई है। **(6)** कवियों को अपनी वैयक्तिक प्रणयानुभूतियों रहस्यमय आवरणों में प्रस्तुत की है। **(7)** समस्त सृष्टि में एक ही परमतत्व की व्याप्ति का विचार हो, जिसे सर्वात्मवाद या सर्ववाद से मिलता–जुलता समझना चाहिए छायावाद का मूल दर्शन है। **(8)** दुख और करूणा को इन कवियों ने काव्य का तत्व बनाया। **(9)** छायावादी काव्य में कलात्मक अभिव्यक्ति, रम्य कल्पनाएँ तथा नवीन सौन्दर्य की सृष्टि की है। **(10)** छायावाद की शैली, शिल्प विधान एवं अभिव्यंजना पद्धति नवीनता लिए है।

उक्त सभी लक्षणों को ध्यान में रखकर एक सर्वमान्य सी परिभाषा इस प्रकार व्यक्त कि जा सकती है – '' प्रेम, प्रकृति और मानव सौंदर्य की स्वानुभूतिमयी रहस्परक सूक्ष्म अभिव्यजना लाक्षणिक एवम् प्रतीकात्मक शैली में जिस काव्य में होती है, उसे 'छायावाद' कहा जाता है।'' इसी निष्कर्ष की कड़ी में एक कथन और भी ध्यातव्य है और वो है श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय का। पाण्डेय जी कहते हैं – ''छायावाद कोई नई चीज नहीं है और न यह वर्तमान के गर्भ से प्रसूत कोई नया आश्चर्य ही है। जिस समय प्रथम मानव ने मुस्कराते हुए सुमन में, लजाती हुई कली में, कलकल करती हुई निर्झरिणी में अपने ही प्राणों जैसी कोई प्राण छाया धूम्रावरण आढे देखी, उसी समय छायावाद की भावानुभूति उसके हृदय में उदित हुई।'' यहाँ इसी संदर्भ में एक बात और भी ध्यान देने योग्य है वो है इस काव्य में व्याप्त दुःखवाद, निराशा और वेदना का भाव तथा कल्पना तत्व की प्रधानता। दुःख और कल्पना ये दोनों ही छायावाद के बुनियादी तत्वों में से थे। शायद इसीलिए महादेवी वर्मा भी दुःख के संबंध में कहती है– ''दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है, जो सारे संसार को एक सूत्र में बांध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढी तक भी न पहुँचा सके, किंतु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता।'' फलतः दुख और वेदना के भाव को इन छायावादी कवियों ने ऐसा बना दिया जो जीवन को विषमय नही, कटु नही अपितु अमृतमय व मधुर बनाता है। इसी प्रकार कल्पना तत्व भी इनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन गया था। इस कल्पना शक्ति को कुचलने या दबाने का अभिप्राय था स्वयं इन कवियों के व्यक्तित्व को मिटाना। नामवर सिंह के शब्दों में कहें तो कल्पना इन कवियों की राग – शक्ति भी थी और बोध –शक्ति भी । आगे वे कहते हैं, जिस प्रकार वर्तमान से असंतुष्ठ मन अतीत की तरफ भागता है, उसी तरह जगत से असंतुष्ठ होकर किसी अन्य जगत की खोज में इनका मन निकल पडता है और न मिलने पर कल्पना के द्वारा एक सुखद लोक की सृष्टि कर डालता है। छायावाद काव्य में 'उसपार' 'क्षितिज पार' जैसी बाते जो थी वे इसी भाव की अभिव्यक्ति थी।

अतः हम कह सकते हैं कि यह दुःख, वेदना का भाव तथा कल्पना की शक्ति ये वास्तव में इन कवियों के हाथों में एक मजबूत तत्व थे इन्ही तत्वों ने इस काव्य में एन्द्रिय बोध जगाए तथा विचित्र सी एक संवेदनशीलता को उभारा। 'ग्रंथि' में स्वय पन्त भी वेदना के इस व्याप्क भाव को इन पंक्तियों में प्रकट करते हैं :

वेदना! कैसा करूण उद्‌गार है।
वेदना ही है अखिल ब्रह्माण्ड यह,

तो दूसरी तरफ 'कल्पना' तत्व को लक्षित करे तो हम 'कामायनी' के मनु को देखते है जब वे आह भर कर कहते हैं –

आह, कल्पना का सुन्दर वह
जगत मधुर कितना होता।
सुख स्वप्नों का दल छाया में,
पुलकित हो जगत – सोता।

इन पंक्तियों में मनु भी उसी कल्पना लोक की ओर संकेत कर रहे हैं। सच में देखा जाए तो छायावाद में वर्णित प्रकृति, नारी, देश प्रेम भाव या जो भी सौंदर्य तत्व है वह इसी कल्पना तत्व से और भी सुरम्म हो गया है।

छायावाद का प्रवर्तक कवि : छायावाद शब्द के प्रथम प्रयोक्ता पर विचार कर लेने के बाद, अब इसके प्रवर्तक कवि पर विचार किया जाएगा, यद्यपि इस संबंध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद रहा है।

अतः इस विवाद से बचने के लिए मुझे पंत जी के विचार उपयुक्त लगे, क्योंकि इस विषय पर उन्होने कहा था कि – '' मेरे विचार से छायावाद की प्रेरणा छायावाद के प्रमुख कवियों को उस युग की चेतना से स्वतंत्र रूप से मिली है। ऐसा नही हुआ कि किसी एक कवि ने पहले उस धारा का प्रवर्तन किया हो और दूसरों ने उसका अनुगमन कर उसके विकास में सहायता दी है।'' इसलिए निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि छायावाद, रोमांटिक अर्थात स्वच्छन्द काव्यधारा की ही विकसित अवस्था है, जिसकी शुरूआत श्रीधर पाठक, रामनेरश त्रिपाठी तथा मुकुटधर पाण्डेय आदि ने की तथा इसे प्रसाद, पंत, निराला व महादेवी वर्मा ने उत्कर्ष पर पहुचाया। फलतः इन सभी कवियों का इसमें समान योगदान रहा है।

छायावाद और रहस्यवाद : जब हम रहस्यवाद के तात्विक अर्थ को समझते हैं, तो पाते हैं कि रहस्यवाद एक ऐसा दर्शन है, जिसके अनुसार सत्य एक रहस्य है, जिसका केवल दर्शन होता है। वहीं प्रसाद ने छायावाद पर प्रकाश डालते हुए कहा है ''.... छायावाद के मूल में रहस्यवाद भी नहीं है। प्रकृति विश्वात्मा की छाया या प्रतिबिम्ब हैइसलिए प्रकृति को काव्यगत व्यवहार में ले आकर

छायावाद की सृष्टि होती है– यह सिद्धांत भी भ्रामक है।'' संक्षेप में प्रसाद भी रहस्यवाद तथा छायावाद को पृथक मानते हैं। वस्तुतः छायावादी कवियों ने प्रायः व्यक्तिगत प्रणयानुभूतियों की व्यंजना में कहीं – कहीं आत्मा व परमात्मा के प्रेम का भी संकेत किया है। जिसके कारण इन दोनों को एक मानने का भ्रम उत्पन्न हुआ है। जबकि छायावादी काव्य के अवलोकन से यह सिद्ध को चुका है कि छायावाद के लिए आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यक्ति आवश्यक नहीं है। जबकि रहस्यवाद में यह नितांत आवश्यक है।

छायावाद तथा प्रकृति का सम्बंध : छायावाद तथा प्रकृति का सम्बंध अटल माना जाता है। यदि छायावाद का प्रकृति से अनिवार्य संबंध है, तो सम्पूर्ण छायावादी काव्य का अवलोकन करने के बाद कहा जा सकता है कि इस युग में प्रकृति प्रमुखता से चित्रित जरूर हुई है परन्तु इसका छायावाद से अनिवार्य संबंध नही माना जा सकता है। इन कवियों ने प्रकृति को प्रमुख विषय – वस्तु बनाया जरूर है शैली रूप में (मानवीकरण, विपर्य, प्रतीक विधान, लाक्षणिक वैचित्रय) भी प्रकृति माध्यम बनाया है। अस्तु, प्रकृति का छायावाद से घनिष्ठ संबंध तो मान्य है, पर अनिवार्य संबंध नहीं। बहुत सी छायावादी कविताओं में प्रकृति गौण भी रही है। अतः प्रकृति – प्रेम को छायावादी कविता की प्रमुख प्रवृति के रूप में स्वीकृत किया जा सकता है अनिवार्य तत्व के रूप में नहीं।

छायावादी काव्य में नारी भावना : जो नारी रीतिकाल में विलास व उपभोग की वस्तु बनकर रह गई थी, छायावाद में उस नारी को गरिमा प्रदान की गई। इन कवियों ने नारी के प्रति उदात व गरिमामय दृष्टिकोण अपनाकर समाज में उसे आदरणीय स्थान पर प्रतिष्ठित किया, उसे प्रेरणा का पावन उत्सं मानते हुए गरिमा प्रदान की। छायावादी काव्य में नारी दया, क्षमा, करूणा, प्रेम श्रृद्धा की देवी है तथा इन्ही गुणों के चलते वह श्रद्धा की पात्र है।

नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पग तल में। **– प्रसाद**

छायावादी कवियों ने मूलतः नारी सौंदर्य तथा प्रेम के चित्रण में, प्रकृति सौंदर्य तथा प्रेम की व्यंजना में तथा अलौकिक प्रेम या रहस्वाद के निरूपण में कल्पना के रंग भरे है।

छायावाद तथा शैलीगत सौंदर्य : प्रारम्भ में तो महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा रामचन्द्र शुक्ल जैसे प्रखर विद्वानों ने छायावाद को अभिव्यंजना की विशेष पद्धति या शैली मात्र के रूप में देखा था, किंतु बाद में स्वयं शुक्ल तथा उनके अनुयायियों ने मान लिया की छायावाद अन्योक्ति प्रधान–शैली या प्रतीक शैली से बढ़कर है, इसमें शैली के साथ–साथ विषय की भी नूतनता है, छायावादी कवि जगत तथा जीवन के मार्मिक पक्षों की तरफ बढते दीखते है इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि छायावाद काव्य विषय–वस्तु एवं शिल्प दोनों ही दृष्टियों से नवीनतम लिए है। लाक्षणिक भाषा का प्रयोग, प्रतीकात्मक शैली, उपचारवक्रता तथा नवीन अलंकार के कारण इस काव्य में शिल्पगत नवीनतम दिखाई पड़ती है। जहाँ तक अभिव्यंजना–कौशल का प्रश्न उठता है छायावादी कवियों ने खड़ी बोली भाषा को कांतिमय, भव्य तथा समृद्ध बनाने का कार्य किया है। इनकी काव्य – भाषा विशुद्ध साहित्यक खड़ी बोली है। जिसे इन कवियों ने उत्कर्ष पर पहुँचाया है। अतः ये कवि भाव–व्यंजना के कुशल शिल्पी रहे हैं। इनका रूप–विन्यास कहना चाहिए। परिष्कृत रूचि बोध तथा आधुनिक सौंदर्य भावना पर आधारित है जिसमें भावों को प्रधानता मिली हैं। 'पल्लव' की भूमिका में पन्त जी लिखते हैं – ''अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं है, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिए राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान है। इन कवियों ने कुछ नये अंलकार तथा 'मानवीकरण' तथा विरोधाभास आदि का सुन्दर प्रयोग करके खड़ी बोली की चमक बढ़ाई है तथा कुछ नये उपमान गढ़ कर भाषा को समृद्ध किया है। इन्होंने परिचित प्रचलित शब्दों में नवीनता भर दी है। कुछ प्राचीन छन्दों यथा – रोला, रूपमाल, सखी, राधिका, अरिल्ल आदि को इन्होंने पुनर्जीवित कर अपने भाव के अनुरूप उनका उपयोग किया है, लेकिन यहां यह बात भी विचारणिय है कि चरणों, मात्राओं तथा तुकांतों की आवृति के बंधन इन्हे स्वीकार्य नहीं इसलिए कविता में छंद मुक्ति की बात इन्होंने कही, तथा हिन्दी में छायावादी कवि निराला 'मुक्त छंद' के प्रवर्तक भी बने। इस तरह अमूर्त उपमान, मुक्तक गीति शैली तथा चित्रोपमा भाषा के साथ–साथ नवीन छन्द विधान भी इस काव्य की अपनी विशेषताएँ हैं।

छायावाद – विचारों के झरोखे से : समग्रतः छायावादी काव्य समृद्ध काव्य है, मेरे विचार से इस काल की कमजोर कड़ी की बात करें, तो वो यही है कि इनका वैयक्तिक स्वर एक दायरे में ही निश्चित रहा। ये कवि जरा भी बाह्योन्मुखी न हो सके, ये कवि जो राग अलाप रहे थे, उससे समाज की वास्तविकता कोसों दूर थी, शायद यही कारण रहा हो कि स्वयं पंत ने अन्त में में पुकारा–

ताक रहे हो गगन ?.....
देखो भू को! जीवन प्रसू को।

दूसरी बात छायावादी काव्य में केवल कोमल भावों को ही अभिव्यकित मिली, जबकि समाज सन्तुलन हेतु उत्साह, वीरता, साहस, क्रोध जैसे भावों की भी आवश्यकता होती है। कुछ शैलीगत दोष जैसे की कल्पना की क्लिष्टता, उपमानों का अस्वाभाविक प्रयोग तथा अस्पष्टता इनमें जरूर है। फिर भी हम कह सकते हैं कि छायावाद के कारण हिन्दी की अभिव्यंजना शक्ति विकसित हुई है तथा इस काव्य का ऐतिहासिक और साहित्यक महत्व आज भी अक्षुण्ण है। परिणामतः छायावादी काव्य वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय हित चिन्तन के साथ कल्पना शक्ति के द्वारा हिन्दी साहित्य में सुन्दर भाव विधान से सुन्दर व नवीन शब्द चित्रकारी की है तथा हिन्दी खड़ी बोली को एक नए कलात्मक उत्कर्ष पर पहुँचाया है, इस काव्य धारा का अंत नही हुआ है। आज की हिन्दी कविता पर अनेक छायावादी प्रवृतियाँ आज भी जीवित है।

सन्दर्भ :

(1) सिंह, नामवर : छायावाद।
(2) *सिंह, नामवर : आधुनिक साहित्य की प्रवृतियाँ।*
(3) *झारी, डॉ.कृष्णदेव : छायावाद और उसके चार स्तम्भ।*
(4) *शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास।*
(5) *पन्त, सुमित्रानंदन : पल्लव।*
(6) *राय, डॉ.कुसुम : हिन्दी साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास, खण्ड – 3.*

❁❁

UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Refereed Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 169, Vol - XVII (2), April - 2018, Page No. 145-146
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

जैनेन्द्र कुमार के असामान्य पुरुष पात्र : एक अध्ययन

प्रस्तुत शोधपत्र, जैनेन्द्र कुमार के असामान्य पुरुष पात्रों के अध्ययन पर आधारित है। जैनेन्द्र कुमार ने अपने उपन्यासों में परिस्थिति विशेष में अन्य पात्रों को लेकर उनके मनोद्वेगों, विचार सम्बंध एवं चेतन-अवचेतन के कार्यों, अहम्-इदमके द्वंद्वों से भरपूर क्षीणकाय उपन्यासों की रचना की है। इनके आकर्षण का मुख्य केन्द्र चारित्रिक अंतर्द्वन्द्व का वर्णन कौशल है। जैनेन्द्रजी ने अपने पात्र की ऊपरी आकृति के वर्णन के स्थान पर उसके हृदय की प्रवृत्तियों, सूक्ष्म गतिविधियों, मनोभावों के घात-प्रतिघात तथा मनोविकारों के विश्लेषण को प्रमुखता दी है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो पात्र के आकृतिमूलक वर्णन के बजाए उसकी प्रवृत्तिमूलक वर्णन करके उन्होंने चरित्र चित्रण की नई मनोवैज्ञानिक प्रणाली को जन्म दिया है।

डॉ.कुसुमलता श्रीवास्तव* एवं आकांक्षा जैन**

सन् 1930 के बाद हिन्दी जगत् में मनोवैज्ञानिक विचारधारा का पदार्पण हुआ। इसके पहले के साहित्यकारों को फ्रायड और मनोवैज्ञानिक का ज्ञान ही न था, लेकिन तब भी उन्होंने अपनी रचनाओं में जीवन के भाव–सत्य का चित्रण बहुत ही कुशलता से किया है। वस्तुतः साहित्य का सृजन मानव द्वारा, मानव के लिए, मानव की पृष्ठभूमि में रखकर किया जाता है। इसलिए कोई भी कृति मनोवैज्ञानिकता से अछूती नहीं रहती।

हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की नयी परम्परा का श्रीगणेश करने का श्रेय जैनेन्द्र कुमार को दिया जाता है। उन्होंने मानव के अन्तर्जगत को आधार बनाकर मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का सृजन किया और उपन्यास रचना में मौलिकता का परिचय दिया। उन्होंने सामाजिक प्रश्नों और समस्याओं के स्थान पर मानव के आन्तरिक जीवन की कुंठाओं और उलझनों को अपने उपन्यासों का विषय बनाया। समाज की अपेक्षा व्यक्ति को प्रमुखता देकर उन्होंने मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की सृष्टि की। जैनेन्द्र ने अपने पुरुष पात्रों में सामान्य और असामान्य दो प्रकार के पात्र चित्रित किए हैं। सामान्य पात्रों की मूल वृत्तियाँ उनके नियंत्रण में रहती है, किन्तु असामान्य पात्रों की मूल वृत्तियाँ उनके नियंत्रण में नहीं होती है और उनका मानसिक संतुलन अस्थिर होता है। प्रस्तुत शोध पत्र में जैनेन्द्र के प्रमुख असामान्य पात्रों को सम्मिलित किया गया है।

सुनीता का हरिप्रसन्न काम कुंठित है। काम अमुक्ति के कारण ही उसमे हिंसा और दुर्दान्दता दिखाई देती है। सुनीता के सम्पर्क में आकर हरिप्रसन्न का आकर्षण उसकी ओर बढ़ता जाता है। क्रांति के रूखे मार्ग से उकताकर वह सात्विक नेह को पाने के लिए लालायित है। सुनीता के साथ अंधेरी रात में शांत वातावरण में हरिप्रसन्न अपनी मानसिक कुंठाओं से संघर्षरत है। उस समय अस्पष्ट काम का प्रबल आवेग उसके अहं पराहम (सुपर इगो) को धकेलकर उसके मन का संचालन करता है और वह धीरे–धीरे अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए अग्रसर होता है, किन्तु लहक तो लहकती ही गयी। फिर वह पास आ बैठा। धीमे से उसके हाथ को उठाया और मुँह से लगाया। शनैः–शनैः फिर सुनीता की देह पर अपने हाथ फेरना शुरू किया। मद जैसे उस पर चढ़ता ही जाता है ..... और अन्त में सुनीता के स्पष्ट पूछे जाने पर वह अपने आवेग को ठेठ शब्दों में व्यक्त करता है .....'क्या चाहता हूँ? तुम पूछोगी ..... क्या चाहता हूँ ?तो सुनो, तुमको चाहता हूँ, समूची तुमको पाना चाहता हूँ।''[1]

डॉक्टर उपाध्याय का कथन है कि 'सुनीता के नग्न शरीर के दर्शन मात्र से ही हरिप्रसन्न की पूर्ण तृप्ति हो जाती है। जो रहस्य का केन्द्र उसके लिए जिज्ञासा का विषय बना हुआ था, वह उसके सामने खुले रूप में प्रकट होते ही उसकी जिज्ञासा का अन्त हो जाता है।''[2]

काम–कुंठा के कारण हरिप्रसन्न मानसिक रूप से अशान्त रहता है और उसके मन में असामान्य प्रवृत्तियाँ पनपती है।

कल्याणी के डॉ. असरानी की पहली पत्नी की मृत्यु हो चुकी है। डॉ.असरानी लोभी प्रवृत्ति का व्यक्ति है। डॉ. असरानी की वर्तमान पत्नी कल्याणी उससे विवाह नहीं करना चाहती थी, किन्तु उसे बदनाम कर छलपूर्वक कल्याणी से विवाह कर लिया। डॉ. असरानी अपनी पत्नी कल्याणी के प्रति शंकालू ही रहता है। इस कारण वह कल्याणी को शारीरिक एवं मानसिक कष्ट देता रहता है। वह डॉ. भटनागर और रायसाहब का नाम लेकर कल्याणी को बदनाम करता है। डॉ. असरानी अपने स्वार्थ के कारण कल्याणी के सहपाठी प्रीमियर के करीब आकर उससे लाभ उठाना चाहता है। प्रीमियर, कल्याणी का पूर्व–प्रेमी है, इसके लिए वह कल्याणी को तैयार करता है कि

**सेवानिवृत्त प्राध्यापक (हिन्दी विभाग), शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (मध्यप्रदेश)*
***सहायक प्राध्यापक, प.म.ब.गुजराती वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (मध्यप्रदेश)*

वह अपने पूर्व प्रेम का प्रकटीकरण कर प्रीमियर को आकृष्ट करे, किन्तु कल्याणी इसमें रूचि नहीं लेती है।

इस प्रकार डॉ. असरानी अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए अपनी पत्नी की चापलूसी करता है और अपने स्वार्थ के कारण अपनी पत्नी को उसके पूर्व प्रेमी के समक्ष प्रस्तुत करता है। इस प्रकार कल्याणी उपन्यास में डॉ. असरानी का चरित्र असामान्य रूप से प्रकट होता है।

सुखदा उपन्यास में मि. लाल का आकर्षण सुखदा की ओर बढ़ता है। वह जानता है कि सुखदा विवाहित है और उसके घर में बच्चा भी है फिर भी वह अपनी कामुकता पर नियंत्रण नहीं रख पाता है।

लाल की अप्रत्याशित स्वच्छन्दता से स्तब्ध सुखदा मौन धारण कर लेती है। लाल सुखदा से पुनः प्रश्न करता है कि सुखदा क्या तुम अपने पति से प्रेम करती हो ? सुखदा के अखण्ड मौन धारण किये रहने पर वह स्वयं प्रेम और विवाह को संक्षिप्त में समझाता है और कहता है ''प्रेम और विवाह दो हैं, क्यों क्या कहती हो ?''(3)

लाल काम कुंठित है। वह अपनी काम भावना का दमन करता है। यदा–कदा उसका कामावेग विस्फोटक रूप में प्रकट होता है। उसको सुखदा के स्पर्श तक सीमित रखने के लिए उसके पराह्म (सुपर इगो) को स्वाभाविक पशु वृत्तियों के साथ जूझना पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप उसका व्यवहार कभी–कभी अप्रत्याशित हो जाता है। लाल की काम कुंठा का मूल कारण उसके जीवन में नारी–प्रेम का अबाध और नारी प्रेम से वंचित रहने का कारण है, उसकी निर्धनता।

विवर्त उपन्यास का जितेन एक गरीब युवक है और नौकरी के दौरान उसका सम्पर्क शहर के प्रतिष्ठित वकील की इकलौती लड़की भुवनमोहिनी से हो जाता है। धनाभाव के कारण वह अपनी हीनभावना से ग्रसित है। वह भुवनमोहिनी से कहता है ''तुम ठहरी अमीरजादी। मैं मेहनत करके खाता हूँ। पाई–पाई पसीने के बल पर मुझे कमानी पड़ती है। फिर हमारे बीच यह क्या हो गया है। सोच लो मोहिनी, कहीं तुम से भूल तो नहीं हो गयी है।''(4)

जितेन अपनी गरीबी से दुःखी है, वहीं भुवनमोहिनी को बचपन में किसी का प्रेम प्राप्त नहीं हुआ। उसे ऐसे व्यक्ति की तलाश है, जो उसे भरपूर प्यार दे सके। जितेन का अहंकार उसकी इच्छा को आहत करता है और वह उससे शादी नहीं कर पाती है। भुवनमोहिनी की शादी अन्यत्र हो जाती है। जितेन सामाजिक विषमताओं को मिटाने के लिए साम्यवादी विचारधारा को अपनाता है। वह पंजाब मेल को गिराता है और अपनी प्रेमिका भुवनमोहिनी के घर में छिपता है।

जितेन गरीबी के कारण हीन भावना से पीड़ित है और असफल प्रेम से कुंठित भी है। वह ऊपर से आक्रामक और अन्दर से कोमल भी है। भुवनमोहिनी उसके मन के आंतरिक भावों को अच्छी तरह से समझती है।

व्यतीत उपन्यास का जयंत अपनी प्रेयसी अनीता की सगाई अन्यत्र हो जाने का समाचार सुनकर विचलित हो जाता है। मन ही मन जयंत अनीता को अपनी प्रेमिका मानता रहा है। जयंत के मन में अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता है। प्रारंभ में जयंत की प्रकृति बहिर्मुखी थी, किन्तु प्रेम में असफल हो जाने के बाद वह अन्तर्मुखी हो जाता है। सांसारिक दृष्टि से वह असामान्य है। जयंत अपनी जीवन से निराश है। अनीता के प्रयत्न करने पर भी वह अपनी इस स्थिति से बाहर नहीं निकल पाता है। इसी बीच वह जिस समाचार–पत्र में काम करता था उसकी पुत्री सुनीता के साथ चाहने पर भी प्रेम नहीं कर पाता है। वह कहता है कि ''सुनीता की ओर आकर्षित होने का कारण यह था कि प्रेम की पोथी एक झोंके में खुल आई थी ..... खुली वह लेकिन पढ़ न सका। बात यह हुई अनिता की तुम्हारी याद आ गई। कुछ पढ़ा न गया। अब तुम हो कि देखकर ही प्रेम भागता है।''(5)

जयंत चन्द्री से विवाह कर लेता है, किन्तु जयंत के मन में अनित के प्रति रूग्ण आसक्ति है। वह अनिता के अतिरिक्त किसी और के बारे में सोचता भी नहीं है। जयन्त की उलझन मानसिक है। अनिता और चन्द्री तन की चाबी से उसकी उलझी हुई मानसिक गांठ को खोलने का असफल प्रयत्न करती है।

इस प्रकार जैनेन्द्र कुमार ने अपने उपन्यासों में परिस्थिति विशेष में अन्य पात्रों को लेकर उनके मनोद्वेगों, विचार सम्बन्ध एवं चेतन–अचेतन के कार्यों, अहम्–इदम् के द्वन्द्वों से भरपूर क्षीणकाय उपन्यासों की रचना की है। इनके आकर्षण का मुख्य केन्द्र चारित्रिक अन्तर्द्वन्द्व का वर्णन कौशल है। जैनेन्द्र ने अपने पात्र की ऊपरी आकृति के वर्णन के स्थान पर उसके हृदय की प्रवृत्तियों, सूक्ष्म गतिविधियों, मनोभावों के घात–प्रतिघात तथा मनोविकारों के विश्लेषण को प्रमुखता दी है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो पात्र के आकृतिमूलक वर्णन के बजाए उसकी प्रवृत्तिमूलक वर्णन करके उन्होंने चरित्र चित्रण की नई मनोवैज्ञानिक प्रणाली को जन्म दिया है।

संदर्भ :

(1) कुमार, जैनेन्द्र : सुनीता, पृ. 235.

(2) *उपाध्याय, डॉ. देवराज : आधुनिक कथा साहित्य और मनोविज्ञान, पृ. 272–274.*

(3) *कुमार, जैनेन्द्र : सुखदा, पृ. 99.*

(4) *कुमार, जैनेन्द्र : विवर्त, पृ. 21.*

(5) *कुमार, जैनेन्द्र : व्यतीत, पृ. 39.*

❁❁

UGC -

APPROVED - JOURNAL